सम्पादक-हरिशङ्कर शर्मा ।

ऋष्यङ्क मू० =)॥] [वार्षिक मू० २॥)

* ओ३म् *

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा, ब्रह्मर्षिदेश (संयुक्त-प्रदेश) के मुखपत्र

आर्य्यमित्र

का

ऋष्यङ्क ।

दयानन्द ने जन्म किया श्रुति के हित धारण। दयानन्द वलिदान हुये वेदों के [illegible] तज मान करे हि [illegible]
दयानन्द का धर्म हेत था जीना मरना। दयानन्दका लक्ष्य एक था परहि [illegible]

स हर घट छोड़े ।
वह दल ज़बर-
एकमात्र
ा को छोड़ भी
का सार

लेखसूची:—

१. ईश्वर-प्रार्थना (कविता) ... ... पृष्ठ १

२. "किमाश्चर्य मतःपरम्"–ल० श्री० स्वा० अनुभवानन्द सरस्वती 'शान्त'। २

३. ऋषि दयानन्द को आदर्श बनाओ–ले० श्री० कुँ० हुक्मसिंहजी, प्रधान, सभा। ... ४

४. महर्षि दयानन्द का अन्तिम काल–(कविता) ले० श्री० हीरालाल सूद, बी. ए.,ऐम. आर. ए.ऐस.,सबजज। ६

५. कागज़ी युग–ले० श्री० पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ। ७

६. सच्चा ईश्वरवादी दयानन्द–ले० श्री० मदनमोहन सेठ, ऐम.ए.,ऐलऐल.बी.,ऐम.आर.ए.ऐस., मंत्री,सभा। ६

७. महान् पुरुष दयानन्द–ले० महात्मा नारायण प्रसादजी, मुख्याधिष्ठाता, गु० कु०, वृन्दावन। ... ६

८. सर्वांग-उन्नत एक अद्भुत ऋषि–ले० राज्यरत्न आत्मारामजी, ऐज्युकेशनल इन्सपेक्टर। ... १०

९. श्री स्वा० दयानन्द सरस्वतीजी और आर्य्यसमाज–ले० एक सनातनधर्मी, ऐम. ए.। ... १२

१०. वीरभोग्या वसुन्धरा (कविता)–ले० कविवर श्री० पं० श्रीधरजी पाठक। १३

११. ऋषि दयानन्द शाहपुरा में–ले०राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह वर्मा बहादुर,के.सी.ऐस.आई.,शाहपुराधीश। १३

१२. महर्षि–महिमा (कविता)–ले० कविराज श्री० पं० नाथूराम शंकरजी शर्मा। १४

१३. स्वा० दयानन्द सरस्वती का स्मारक– ले० श्री० मुं० ज्वालाप्रसादजी, बी. ए., ऐलऐल. बी.। ... १५

१४. आर्य्यसमाज का भविष्य–ले० श्री० कुँ० चान्दकरण शारदा, बी. ए., ऐलऐल. बी.। ... १६

१५. कर्ण-कलाप (कविता)–ले० श्रीयुत कर्ण कविजी। १७

१६. एक अद्भुत दृश्य और त्यागी दयानन्द–ले० श्रीयुत प्रो० ज्वाला प्रसादजी, गु० कु०, वृन्दावन। ... १७

१७. स्वा० दयानन्द के जीवन से शिक्षा–ले० श्री० पं० शिवनारायण शुक्ल, बी. ए., ऐलऐल. बी.। ... १८

१८. एक सच्ची घटना–ले० श्री० पं० देवेन्द्र शास्त्री, सांख्यतीर्थ। १९

१९. महर्षि के चरित्र से शिक्षा–ले० श्री० पं० रामस्वरूप शास्त्री, काव्यतीर्थ। २०

२०. निष्काम कर्म–ले० श्री० राजेन्द्र कृष्ण कुमार, बी. ए., हैडमास्टर, डी. ए. वी. स्कूल, आगरा। ... २१

२१. महर्षि का आदर्श (कविता)–ले० रायसाहिब पं० जयराम शर्मा, जगरांवी। २२

२२. भारतोद्धारक दयानन्द–ले० श्री० राजकुमार रणवीर सिंह वर्मा। २२

२३. ऋषि दयानन्द की वेदप्रियता–ले० श्री० पूर्णचन्द्रजी, बी. ए., ऐलऐल. बी.। २३

२४. हमारा भविष्य–ले० श्री० नन्दलाल सिंहजी, बी. ऐस-सी., ऐलऐल. बी., उपमंत्री ... २४

२५. गुरुकुलशिक्षा-प्रणाली–ले० श्रीयुत प्रो० पीतमलाल गुप्त, ऐम. ऐस-सी.। २४

२६. ऋषिपञ्चक (तुकबन्दी)– लेखक–"अबोध"। २५

२७. ऋषि दयानन्द और संस्कृत भाषा–ले० श्रीयुत अमरनाथ जी, प्राइवेट सेक्रेटरी, शाहपुराधीश। ... २६

२८. वेदोद्धारकर्त्ता दयानन्द–ले० आर्य्यवीर ठा० गदाधर सिंहजी। २७

२९. ऋषि का ऋषित्व–ले० श्री० अध्यापक गंगा प्रसादजी, ऐम. ए.। २८

३०. [illegible] सारक दयानन्द–ले० श्री० पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, सम्पादक, हिन्दी-चित्रमयजगत्। ... २९

[illegible] यानन्द (कविता)–ले० "शर्मा" ३०

[illegible] महिमा–ले० श्री० प्रो० घनश्याम शर्मा शास्त्री। ३०

[illegible] (कविता)–ले० श्री० ब्र० द्विजेन्द्रजी, गु० कु०, वृन्दावन। ३१

[illegible] विता)–ले० श्री० शिवशंकर सूफ़ी, मजिस्ट्रेट। ३१

[illegible] ले० श्रीमती विद्यावती, विशारदा। ३२

[illegible] हार, आर्य्य भास्कर प्रेस की पुस्तकें तथा अन्य विज्ञापन।

आर्य्य मित्र

का

कृष्णाङ्क ।

वर्ष २०   अङ्क ४३-४४

——::०::——

आगरा, बुधवार, दीपावली, सम्वत् १९७४ विक्रमी श्रीमद्दयानन्दाब्द ३४

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शंन इन्द्रो बृहस्पतिः शंनो विष्णुरुरुक्रमः

ईश्वर प्रार्थना ।

हे जगदीश देव ! मन मेरा, सत्य सनातन धर्म न छोड़े ।

* १ *

सुख में तुझ को भूल न जावे,
नेंक न सङ्कट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे,
समझ न तार क्षमा का तोड़े ।

* २ *

त्याग जीव के जीवन-पथ को,
टेढ़ा हांक न दे तन-रथ को,
अति चञ्चल इन्द्रिय घोड़ों की,
भ्रम से उलटी बाग न मोड़े ।

* ३ *

होकर शुद्ध महाव्रत धारे,
मलिन किसी का माल न मारे,
धार प्रचण्ड क्रोध पाहन से,
हा ! न प्रेम रस कर घट फोड़े ।

* ४ *

ऊंचे विमल विचार चढ़ावे,
तप से प्रातिभ ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे हि[illegible]
शङ्कर श्रुति का सार [illegible]

—श्री [illegible]

किमाश्चर्य्यमतः परम् ।

(लेखक—श्री स्वा० अनुभवानन्द सरस्वती, "शान्त ।")

——::o::——

स्वामी दयानन्द के वेदनाद और आर्य्यसमाज के वर्त्तमान आन्दोलन से पूर्व वेदों के विषय में कुछ कहना अथवा वेदों का महत्त्व वर्णन करना एक प्रकार का पागलपन सा समझा जाता था। ऐसा करने वाले लोग उस समय संस्कृत के फटे-पुराने, दकियानूसी और दिवालिये साहित्य का खोज एवं प्रचार करने वाले माने और समझे जाते थे। यह वह समय था जब कि पौराणिक-मिथ्यावाद (Mythology) के ठेकेदारों ने भारत की उभरती हुई मानसिक स्वतंत्रता पर "अब्रह्मण्यम्" का ताला लगा रक्खा था। यह वह समय था जब कि "जो कुछ होता चला आया है वही होता रहेगा।,, यही एक आकाशवाणी तमाम वेदों और शास्त्रों का निचोड़, ऋषियों मुनियों के उपदेशों का सार संग्रह, बल्कि "इतीयं वैदिकी श्रुतिः" समझा और माना जाता था। धार्मिक और सामाजिक अत्याचारों पर व्यास आदि मुनियों की मोहरें और धर्मवाद की चाशनी लगा कर ऐसा रसीला बना दिया गया था कि मानसिक दासता के जल-वायु में पली या पाली हुई आत्मायें उन्हीं को वैकुंठ का मधु समझ कर गंगा यमुना की खाड़ियों में ठोकरें खाती हुईं चाट २ कर स्वर्ग-सुख का अनुभव कर रही थीं। ऐसे लोग एक ही मस्तिष्क में कई एक कोठरियें बना या समझकर तमाम में विविध उपास्य देवों की स्थापना करके भी किसी प्रकार परस्पर विरोध नहीं समझा करते थे। बल्कि ऐसा समझने वालों को यह मन्त्र सुना फटकार दिया करते थे कि

जा गुरु की दीक्षा लई बाकी राखो टेक।
रजब निशाना एक है गोलन्दाज़ अनेक॥

किन्तु अब बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। अब वह बात उतने बल से नहीं कही जाती। अब देश, जाति एवं समाज की परिस्थिति में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। इस नवीन परिवर्त्तन एवं अन्तर की सीमा का ठीक २ निर्धारण करना बहुत क...न कार्य है। क्योंकि जो हिन्दूसमाज आज से ...ी शूद्रौ नाधीयाताम् की डुगडुगी डमकाता हुआ ...ारों कोनों में डोल रहा था, आज वह स्वयं उसकी ... पैर फेंकते हुये स्त्री-शिक्षा में भारत का अगुआ बनने के लिये पैर पसार रहा है। इतनी शीघ्रता से इतना परिवर्त्तन और इतनी जागृति भारत, विशेषकर हिन्दूसमाज-जैसे मानसिक दासता से घिरे हुए समाज एवं देश के लिये सचमुच आश्चर्यजनक बल्कि करामात है।

जिस समय स्वामी दयानन्द ने भारतक्षेत्र में धार्मिक-युद्ध आरम्भ किया था, उस समय कोई नहीं कह सकता था कि स्वामी दयानन्द का बुद्धिविकास और कार्यक्रम भारत के धार्मिक इतिहास में इतनी बड़ी क्रान्ति के उत्पन्न करने का कारण बन जायगा। किन्तु दिल और दिमाग़ रखने वाले लोग आश्चर्यभरी दृष्टि से चारों ओर देख रहे हैं कि भारत की शिरोमणि हिन्दूजाति या आर्यजाति में न केवल धार्मिक वरन् नैतिक एवं सामाजिक परिवर्त्तन की भी एक बहुत बड़ी लहर उठ रही है जो सचमुच धीरे २ एक बहुत ही विलक्षण क्रान्ति का रूप धारण कर रही है। इस धार्मिक एवं सामाजिक क्रान्ति के परिणाम बहुत ही गहरे और चिरस्थायी होंगे, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं किया जा सकता। इस समय जितनी भी सुधारक संस्थायें—विद्या-सम्बन्धिनी एवं अन्यान्य—देख रहे हैं, वे तमाम इस क्रान्ति के ही बाह्य परिणाम हैं जो मनुष्यों के आन्तरिक विचार परिणाम से उत्पन्न हुए हैं।

यह सच है, और इसके मानने में हमें तनिक भी संकोच नहीं कि इस नवीन युग, नवीन विचार, नवीन जीवन एवं नवीन परिवर्त्तन के अभ्युदय में शिक्षा की वृद्धि आदि अन्य भी कारण हैं, और कि इस समस्त क्रान्ति का श्रेय (Credit) केवल स्वामी दयानन्द को ही नहीं है परन्तु इतना होने पर भी दयानंद का एक कट्टर से कट्टर विरोधी भी इससे इनकार नहीं कर सकता कि जिन जिन शक्तियों साधनों और कारणों ने इस क्रान्ति के उत्पन्न करने में भाग लिया है, दयानन्द उन सब में शिरोमणि एवं उच्चासन रखता है। सच तो यह है कि जो काम दिन को लाने में उषा करती है, वही काम इस युग के लाने में दयानन्द ने किया है। उषा यदि दिन की आदि-जननी है तो दयानन्द इस नवीन युग का आदि-बीज। स्वामी दयानन्द के निःसीम परिश्रम और अद्वितीय कार्यक्रम ने भारत के धार्मिक इतिहास और मानवविचार में जो क्रान्ति उत्पन्न की है, उसे भारत का शिक्षितसमुदाय सम्पूर्ण रूप से सौ वर्ष में भी सर्वांग कर पाता या नहीं, इस में पूर्ण सन्देह है। नहीं कहा जा सकता कि यदि स्वामी दयानन्द न होता, या वह इसी कार्यक्रम का अवलम्बन न करता तो भारत का

धार्मिक इतिहास क्या रूप धारण करता और अब तक किस दशा में हम उसे देख पाते ?

स्वामी दयानन्द के विचारों को पेट पापी के पुजारी-पुंज ने बहुत कुछ छिपाने की कोशिश की, उसे ईसाई कह कर लोगों के नेत्रों से गिराना चाहा, उसे नास्तिक बता कर बातों के व्यापारियों को उलझाना चाहा, उस ने न करना किया और न कहना कहा, पर सचाई की किरणें अन्धकार के तमाम पर्दों को फाड़ कर बाहर निकल आती हैं, और निकल आईं। लोगों ने दयानन्द के विचारों को समझा, उस के कार्यक्रम को देखा और उस की सत्ता का अनुभव किया।

किन्तु संसार ज्यों २ उसकी सत्ता का अनुभव कर रहा है, ज्यों २ उस के कार्यक्रम का मान कर रहा है, और जितनी शीघ्रता से उसके विचारों को क्रिया द्वारा अपना रहा है, आर्यसमाज के नामलेवा त्यों २ और उसी तेज़ी से उस की सत्ता को भुला एवं उसके विचारों को परे हटा रहे हैं। आर्यसमाज ने अपने मनोतीत किन्तु दुभाषिये एवं अपूर्ण उपदेशकों द्वारा स्वामी दयानन्द के निश्चित विचारों के क्रियात्मक मार्ग में जो रोड़ा अटकाया है, वह पूर्णरूप से कब तक और कितनी शक्ति के व्यय करने से हटाया जा सकेगा, इस विषय में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

हम यह नहीं कहते कि आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया, हम यह नहीं कहते कि आर्यसमाज कुछ नहीं कर रहा, हम यह भी नहीं कहते कि आर्यसमाज कुछ नहीं करेगा या कुछ नहीं कर सकेगा; बल्कि हम यह कहते हैं और, जब तक आर्यसमाज अपनी परिस्थिति को नहीं समझेगा, बराबर कहते रहेंगे कि—"दयानन्द ने जो अमानत आर्यसमाज को दी थी, इसने जो विचार आर्यसमाज को दिये थे, उसने जो पूंजी आर्यसमाज को दी थी, आर्यसमाज ने उसे उन्नत करने, बढ़ाने और उसकी अभिवृद्धि करने के स्थान में क्रियात्मक रूप से कम किया है–घटाया है। उस की जिस रूप से रक्षा करनी चाहिये थी, आर्यसमाज समुदाय रूप से नहीं कर सका।" इसलिये यदि आर्यसमाज की यही दशा रही, यदि उस के प्रचारक इसी नीति से काम करते रहे, यदि उस के विचारों और सिद्धान्तों की इसी क्रम से रक्षा की गई तो संसार बड़े शोक और दुःख से देखेगा कि आर्यसमाज का क्रियारूप से दिवाला निकल रहा है, और वह उसी गढ़े में अपने आप, किन्तु बड़े वेग से, गिर रहा है, जिसमें से, दयानन्द ने अपनी हड्डियों की सीढ़ियें बना कर, बड़ी कठिनता से निकालने का प्रबन्ध किया था।

पढ़ने वालो, जिस दयानन्द ने हमको जीवनदान दिया, जिस दयानन्द ने हम को मानसिक दासता की रस्सियों से मुक्त किया, जिस दयानन्द ने हमारे मस्तिष्क में पौराणिक–मिथ्यावाद (Mythological tradition) के स्थान में पवित्र वेदों की स्थापना की, जिस दयानन्द ने हमें ह्रीं क्लीं ब्लीं जैसे मिथ्या एवं अनर्थक अपशब्दों के स्थान में सर्वमन्त्र-शिरोमणि एवं वेदों के सारभूत गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया, जिस दयानन्द ने हमारे मनोमन्दिरों में ईंटों, ढेलों और बेकार पत्थरों के स्थान में जगन्नियन्ता महाप्रभु परमात्मा की स्थापना की, जो दयानन्द आर्यसमाज में सचमुच वही काम कर रहा है जो एक पांचभौतिक शरीर में आत्मा किया करता है, उसी आर्यसमाज के नामलेवा उसी दयानन्द के विचारों की क्रियात्मक अवहेलना करते हुये एक बे तेल का टिमटिमाता दीपक हाथ में लेकर किराये के समाज-मन्दिरों में कोई कोना तलाश कर रहे हैं जहां पर कि दयानंद को बिठा सकें और आर्यसमाज में उसके लिये कोई स्थान नियत कर सकें। यदि आर्यसमाज भी हिन्दूवाद का पिछलगू बनकर स्वामी दयानन्द के विचारों और कार्यों को क्रियात्मक रूप से भूलकर केवल उसके नाम का ढोल पीटता हुआ उसी हिन्दूवाद के पुराने कूप में जा गिरा तो कोई नवीन बात न होगी। क्योंकि अबतक दर्जनों सुधारक एवं शान्तिकारक इस कूप का जलपान करके अपनी सत्ता जल में नमक की भांति मिला चुके हैं। किन्तु यदि समस्त हिन्दूवाद के किसी न किसी रूप में स्वामी दयानन्द के विचारों के अनुसरण करते हुये भी आर्यसमाज अपनी अदूरदर्शिता से उसी कूप की ओर पांव बढ़ाता गया–जैसा कि देखा जा रहा है–तो क्लेशित मुख से यही निकलेगा—

किमाश्चर्य्यमतः परम्।

——:०:——

जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ह[illegible] वह दल ज़बर-रीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणि[illegible] इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को [illegible] एकमात्र [illegible]ा को छोड़ भी करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द को आदर्श बनाओ।

(ले०—श्री० कुं० हुक्मसिंह जी, प्रधान, आ० प्र० सभा, संयुक्त-प्रान्त।)

——::०::——

सज्जन पाठक वृन्द, आइये हम लोग आज के पवित्र दिवस के अन्तिम महत्व को स्मरण कर अपने भावों को उच्च, पवित्र, उत्तेजना-पूर्ण और जागृत बनावें, एवं शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के मार्ग में कार्मिक रूप से पदार्पण करें। सज्जन पाठकों से यह बात अविदित नहीं है कि आज का दिवस जहां प्राचीन प्रणाली के अनुसार एक बड़े महत्व का दिवस है, वहां इस दिवस का एक अन्तिम महत्व और भी है। अर्थात् आज ही के दिवस आदर्श स्वरूप महर्षि दयानन्द ने अपनी आदर्शपूर्ण जीवन-यात्रा को अन्तिम रूप से विश्राम दिया है। इस कारण उस महान् आत्मा के पवित्र चरित्र और पुण्यमय जीवन तथा आदर्शपरिपूर्ण कार्यों को स्मरण कर अपने भावी जीवन का सुधार करें, यह आर्य पुरुषों का परम आवश्यक कर्तव्य है।

प्रिय बन्धुवर्ग, आज ऋषि दयानन्द ने अपने आजन्म पवित्र ब्रह्मचर्य्यव्रत को अपनी ५९ वर्ष की आयु में, आयु के अन्तिम दिवस पर्यन्त पालन कर, पूर्ण किया है, इस कारण कम से कम देश के वह नवयुवक, जो ऋषि दयानन्द को श्रद्धा और मान्य दृष्टि से देखते हुये उन्हें आदर्शस्वरूप मानते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे सब नहीं तो उनका कोई भाग तो अवश्य ही आजन्म ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करने का दृढ़ सङ्कल्प कर पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त करके ऋषि का अनुकरण करते हुये मनुष्यमात्र की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति में तत्पर हो और भारतमाता की आजन्म सेवा के निमित्त स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पण करे तथा जीवनदान दे। यदि आज के दिन एक दो पवित्र आत्माओं में भी यह पूजनीय भाव उत्पन्न न हो, तो कहना पड़ेगा कि ऋषि की पवित्र श्रद्धा का भाव किसी व्यक्ति में यथार्थरूप से [illegible]द्यमान नहीं है। जो आजन्म ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करने में [illegible] यदि वे २४ या ४४ वर्ष की आयुपर्यन्त [illegible]को धारण करते हुये शारीरिक, आत्मिक और [illegible]ते में प्रवृत्त हों, तो निःसन्देह हम यह कह [illegible] हृदय में ऋषि की श्रद्धा वास्तविक रूप से विद्यमान है और उस परम आदर्श की ओर हमने कार्मिकरूप से पग बढ़ाया है। सज्जन पाठकवृन्द, ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण करने का एक महान् आदर्श स्थापित किया है, इसलिये इस उच्च आदर्श की ओर वास्तविक प्रवृत्ति होनी चाहिये, इसी से भारत का कल्याण और पुनरुद्धार हो सकेगा। अतएव आर्यपुरुषो, आओ आज हम सत्य हृदय से दृढ़प्रतिज्ञा और प्रण करें कि हम अपनी सन्तानों को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करावेंगे और उनसे कोई निज स्वार्थ की इच्छा न रक्खेंगे।

प्रिय पाठकगण, अब हम महर्षि के एक और परमोच्च आदर्श की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। वह यह कि ऋषि ने युवावस्था में अनेक विद्याओं में पारङ्गत हो विद्या और सुशिक्षा को पूर्णरूप से धारण कर लिया था। धन्य है उस महान् आत्मा को जिसने अनेक प्रकार से सुशिक्षा प्राप्त कर लेने पर सांसारिक समग्र एषणाओं को लात मार कर आजकल के शिक्षितसमुदाय की भांति धनोपार्जन तथा दुनियावी ठाठ-बाट, साज-सामान को अपना उद्देश नहीं बनाया किन्तु अनेक प्रकार की मिल सकने योग्य सम्पत्तियों का परित्याग करते हुये सर्वत्याग के पवित्र आदर्श को स्थापित किया और संसार के उपकार में अपना सर्वस्व अर्पण कर जीवन को विश्राम दिया। ऋषि को आदर्शस्वरूप मानने वाले आर्य पुरुषो, आपका ध्यान उस आदर्श की ओर आकर्षित होना चाहिये। आप सम्पूर्ण स्वार्थ को त्याग सच्चे आत्मसमर्पण और देशानुराग की ओर संलग्न होकर अपनी विद्वत्ता और पवित्र जीवन से भारत की ९८ फ़ीसदी अशिक्षित और मूर्ख प्रजा को शिक्षा प्रदान करने में क्यों नहीं जुट जाते? शिक्षा के प्रचार से भारत को क्यों प्रकाशित नहीं कर देते? क्या तुमने शिक्षा इसलिये प्राप्त की है कि तुम जन्मभर धनोपार्जन करते रहो, सन्तान के पालन-पोषण, लाड़-प्यार और हितचिन्तन में लगे रहो? कोठी, बंगले, गाड़ी, मोटर और सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति की धुनि में ग्रस्त रहो? क्या तुमने शिक्षा का आदर्श केवल यही समझा है कि तुम्हारी शिक्षा के प्रभाव से उपकार की मात्रा और इयत्ता केवल तुम्हीं तक समाप्त हो जाय? यदि तुमने वास्तव में शिक्षा का यही अर्थ, प्रयोजन और उद्देश समझा है तो इससे बढ़कर और कोई भूल नहीं हो सकती। सज्जनो, ऋषि दयानन्द ने

शिक्षा का वास्तविक उद्देश और प्रयोजन अपने जीवन से स्पष्ट बतला दिया है कि परोपकार करना और मनुष्यजाति की उन्नति और सुधार में ही प्रयत्नवान् रहना शिक्षा का प्रधान उद्देश है। समाज और जाति की सेवा में जीवन समर्पण और समाप्त करना ही एक परमपवित्र और पूजनीय सिद्धान्त है। ऋषि ने इस सिद्धान्त को लिख कर और कह कर ही नहीं बताया किन्तु करके दिखा दिया है। इसलिये ऋषि के श्रद्धालु और भक्तपुरुषो, यदि आदर्श स्वरूप भगवान् दयानन्द का सच्चा प्रेम, अनुराग, श्रद्धा और अनुकरण करना चाहते हो तो जीवन का प्रधान कर्तव्य परोपकार, जाति और समाज की सेवा को बना कर वास्तविक रूप में प्रकट हो जाओ। नहीं तो कहा जायगा कि तुमने शिक्षा के सिद्धान्त को न समझ कर उसे भ्रष्ट कर दिया और ऋषि दयानन्द पर तुम्हारी सच्ची श्रद्धा नहीं है।

आर्यपुरुषो, ऋषि दयानन्द ने अपने विद्याबल और परिश्रम से, बिखरी हुई आर्यजाति को एक जाति के सूत्र में बद्ध करने के लिये घोर परिश्रम किया। इतना ही नहीं किन्तु आर्यजाति को आर्य्यजाति और एक जातीयता के भाव में आबद्ध करने के लिये अपना जीवन समर्पण कर दिया। कौन नहीं जानता कि ऋषि दयानन्द के आगमन के पूर्व वर्ण-व्यवस्था के बिगड़े हुये भ्रष्ट सिद्धान्त ने आर्यजाति को किस प्रकार छिन्नभिन्न कर दिया था? प्रत्येक पुरुष जन्म के आधार पर अपने आपको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समझता हुआ एक दूसरे को नीच और घृणित कहता और मानता हुआ पृथक् हो रहा था। इतना ही नहीं, किन्तु, अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उपजातियां बन गईं थी, और वे प्रत्येक एकदूसरे को तिरस्कृत और अधम कहने और समझने लगीं थीं। इस प्रकार आर्यजाति सहस्रों ही नहीं, किन्तु, लक्षों विभागों में विभक्त होकर इस भांति टुकड़ों में बिखर गई कि एक भाग की मानप्रतिष्ठा और सुख समृद्धि दूसरा नहीं चाहता था। यहां तक कि परस्पर नामधारी जातियां एक दूसरे की शत्रु बन गईं और परस्पर अप्रतिष्ठा, अपमान और घृणा करने में प्रयत्नवान् रहने लगीं। जिससे वास्तविक वर्ण-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी और आर्य जाति गुण कर्म हीन होकर मिथ्याभिमान से नाश को प्राप्त हो चुकी थी। अपनी मान-मर्यादा, धन, सम्पत्ति, श्री, लक्ष्मी और चक्रवर्त्ती राज्य पर्यन्त खो चुकी थी। इतना ही नहीं, किन्तु अनेक पन्थ और मनुष्य कृत मतमतान्तरों ने आर्य जाति को फूट, कलह, ईर्षा और द्वेष का घर बना कर चकनाचूर कर दिया था। अतएव आवश्यकता थी कि पुनः आर्यजाति को एक राष्ट्रीयता में आबद्ध किया जाय। अस्तु, ऋषि ने आर्य धर्म के द्वार को खोल कर बिछुड़े हुये भाइयों को शुद्धि का मार्ग निकाल कर वापिस लेना आरम्भ कर दिया। सत्य सनातन वैदिकधर्म का पुनरुद्धार कर एक धार्मिक झंडे के तले प्रत्येक आर्य-सन्तान को आने का प्रबन्ध किया। अनेक जाति और उपजातियों को नष्टकर गुण, कर्म धारण करने का उपाय बतला कर परस्पर एकता से एक आर्य जाति पुनः स्थापन करने की नींव डाली। पतित और अछूत जातियों को मनुष्य समाज का आवश्यक अंग बता उन्हें उठाकर गुणसम्पन्न बनाने तथा उच्च से उच्च पद तक पहुंचाने का उपदेश और युक्ति प्रमाण उपस्थित किये और इस प्रकार महर्षि ने आर्य जाति को एक जातीयता के स्वरूप में लाने के लिये प्रबल प्रयत्न किया। अतएव एक जातीयता और राष्ट्रीयता के प्रेमी सज्जन आर्य पुरुषो, उठो और एक 'आर्य नेशन, बना कर महर्षि के पवित्र उद्योग को सफल करो।

ऋषि दयानन्द ने वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यों का परम कर्त्तव्य बतलाया है। नहीं २ केवल बतलाया ही नहीं, किन्तु इस परम कर्तव्य को आजन्म पालन करके दिखला दिया है। अतएव आर्य पुरुषो, आओ आज ऋषि के स्मरण में हम भी इस पवित्र आदर्श को यथार्थ में करके दिखलावें। वेदों को स्वयं पढ़ें और पढ़ावें तथा पढ़ाने के गुरुकुल रूपी उद्योग को सफल करने के लिये श्रद्धा और शक्ति के अनुकूल दान देकर पुष्ट करें। वेदों का उपदेश सुनें और सुनावें तथा सुनाने के दृढ़ प्रबन्ध वेद-प्रचार फ़ण्ड को निज दान से पूर्ण कर ऋषि की सच्ची भक्ति और स्मरण का परिचय दें।

——:०:——

...गवनमट ज़बर-

— प्राचीन आर्य सभ्यता की एक धारा यूरोप में ... दल ज़बर-
धारा भारतवर्ष में प्रवाहित हो रही है।   ... का एकमात्र
—...क्री को छोड़ भी

महर्षि दयानन्द का अंतिम काल।

[ले०—श्रीयुत हीरालाल सूद, बी० ए०, ऐम० आर० ए० ऐस०, सबजज]

(१)

अहो पीर पैग़म्बर बनकर स्वार्थ-सिद्धि करने वालो !
अरे दम्भ से सर्व जगत का तन मन धन हरने वालो !
आज तुम्हें ऋषि दयानन्द का अन्तिम काल सुनाता हूं।
मृतु पर विजय प्राप्त की जिसने उसका हाल सुनाता हूं॥

(२)

तुम्हें आज मैं बतला दूंगा ऋषि को न था मौतका भय।
मैं तुमसे ही कहला लूंगा दयानन्द स्वामी की जय॥
अन्त भले का भला सत्य से परिपूरित है यह बानी।
जिसका अन्त भला हो उसको भला समझते हैं ज्ञानी॥

(३)

मृतु है शत्रु बुरे लोगों की वह अच्छों को प्यारी है।
झूठों को दुख देने वाली सच्चों को सुखकारी है॥
जिसे मौत कहते हैं वह है इम्तहान लेने वाली।
वह है सत्यासत्य भाव का निर्णय कर देने वाली॥

(४)

अन्त समय में उसके भय से सभी दम्भ खुल जाते हैं।
कच्चे रंग पसीना छुटकर क्षण भर में धुल जाते हैं॥
जिन्हें कभी भय नहीं रोकता बुरे काम के करने से।
वही मूढ़ पापी पाखंडी डर जाते हैं मरने से॥

(५)

उन्हें काल विकराल रूप धर अपना कोप दिखाता है।
उसे देखकर इन लोगों का बोल बन्द हो जाता है॥
पाप कर्म आंखों के आगे एक एक कर आते हैं।
आंखें फाड़ फाड़ कर दम्भी दुख के अश्रु बहाते हैं॥

(६)

उनकी बुरी दशा कहती है कुछ तो हमें सहारा दो।
सुख के समय साथ रहते थे अब भी साथ हमारा दो॥
ये जिनको कहते थे अपना वह भी साथ नहीं देते।
[illegible] हुये हाथ में अपना हाथ नहीं देते॥

(७)

[illegible] हो इस दुनियां में विषयभोग से या धन से।
[illegible] उनको कौन छुड़ावे मोह जाल के बन्धन से॥
पाखंडी के तड़प तड़प कर पापी प्राण निकलते हैं।
देखो विषय भोग के जग में यों अरमान निकलते हैं!!

(८)

जो ईश्वर के परमभक्त हैं जो हैं सब के सुखदाता।
जो रखते हैं सत्य धर्म का इस विचित्र जग से नाता॥
जो रखते हैं दसों इन्द्रियों को अपने पूरे बस में।
जो सुबोध जन वैर त्याग कर मिल जाते हैं आपस में॥

(९)

जो वेदों पर निश्चय रखना अपना धर्म समझते हैं।
जो जनता की सेवा करना अपना कर्म समझते हैं॥
जो ज्ञानी जन यह नहिं कहते वह तेरा यह मेरा है।
जो कहते हैं इस दुनिया में चिड़िया रैन बसेरा है॥

(१०)

जो यह समझ चुके हैं उनके जीव नहीं मरने वाले।
ऐसे महापुरुष ज्ञानी हैं कब मृतु से डरने वाले॥
वह सहर्ष कहते हैं सब से हमको पिता बुलाते हैं।
हमने अच्छे कर्म किये हैं स्वर्गधाम को जाते हैं॥

(११)

नाना पंथ चलाने वालो ! दुनिया को ठगने वालो !
अपने अपने अन्तकाल पर एक दृष्टि तुम सब डालो॥
तुम सब की जीवन घटनायें वर्णित हैं उन ग्रन्थों में।
जिनका बड़ा मान होता है नव-संचारित पंथों में॥

(१२)

कहो कौन सा है तुम में से जिसने मृतु को जीता हो।
कहो कौन सा हंसी खुशी से छोड़ गया था दुनिया को॥
कहा किसी ने पीड़ा के वश मुझे पिता जी भूल गये।
कोई नई नार के पीछे याद खुदा की भूल गये॥

(१३)

सब ने कूच किया इस जग से दुखित दशा में रो रोकर।
लेकिन दयानन्द ने छोड़ा इस दुनिया को खुश होकर॥
जोधपूर वालों ने उसको कई बार बुलवाया था।
महाराज जसवन्तसिंह का उसे बुलावा आया था॥

(१४)

वैदिक धर्म वहां भी फले यह धुन थी ब्रह्मचारी को।
यह आदेश सुनाया उसने चलने की तैयारी हो॥

भक्तजनों ने कहा नम्र हो हम सब हैं आज्ञाकारी ।
लेकिन मारवाड़ मत चलिये अहो जगत के हितकारी ॥

(१५)

मारवाड़ में बहुधा ऐसे कुटिल क्रूर जन रहते हैं ।
जो अपने अवगुण का खंडन भी कदापि नहिं सहते हैं ॥
महाराज उन की करतूतें साफ़ साफ़ बतलावेंगे ।
वह इसलिये क्रोध में आकर बहु विधि दुख पहुंचावेंगे ॥

(१६)

ऋषि ने कहा सता लेने दो मुझे कष्ट से क्या भय है ।
मेरा यह विश्वास अटल है सदा सत्य की ही जय है ॥
मैं तो तेज़ कुल्हाड़ा लेकर मारवाड़ में जाऊंगा ।
पाप वृक्ष को काट काट कर जड़ के सहित उड़ाऊंगा ॥

(१७)

ऋषि ने अपना वचन पाल कर वहां धर्म उपदेश किया ।
राठौड़ों के अग्रगण्य को वेदों का संदेश दिया ॥
कहा आर्य तुम सब बन जाओ विषयभोग से मुख मोड़ो ।
सिंह नहीं कुतियों से मिलते वेश्या से नाता तोड़ो ॥

(१८)

ये उपदेश भले कब लगते किसी कुटिल खल कामी को ।
विषयभोग खुद तो नहिं छोड़ा मगर दिया विष स्वामी को ॥
वाह वाह रे मारवाड़ियो ! हो उदार तो तुम सा हो ।
जिसने अमृत पान कराया तुमने ज़हर दिया उसको ॥

(१९)

दयानन्द आनन्दकन्द को दुष्टों ने वध कर डाला ।
वह तो अमरलोक में पहुंचा हुआ उन्हीं का मुंह काला ॥
दयानन्द के कुटिल घातको ! क्या इसका फल पाओगे ।
इस दुनिया में नरक भोग कर अन्त नरक में जाओगे ॥

(२०)

विष से शूल उठा के आईं ऋषि को बहुत दस्त आये ।
बार बार बेसुध होते थे लेकिन क्या वह घबराये ॥
भड़क रही थी विष की ज्वाला सब शरीर पर छाले थे ।
दयानन्द से धीरजधारी क्या उफ़ करने वाले थे ?

(२१)

जब शरीर के दण्ड महाऋषि को इस भांति सताते थे ।
प्राणायाम साध कर स्वामी घंटों तक रह जाते थे ॥
महावीर आदर्श पुरुष थे और बाल ब्रह्मचारी थे ।
सारे सभ्य जगत के नेता बनने के अधिकारी थे ॥

(२२)

ऐसे देव कोटि के प्राणी कब मलीन मन होते हैं ।
दुख से हार मानने वाले साधारण जन होते हैं ॥
जब शरीर के सारे अवयव बिलकुल शक्तिविहीन हुये ।
महाराज सच्चिदानंद के चरणों में लवलीन हुये ॥

(२३)

वेद मंत्र उच्चारण करके गायत्री का जाप किया ।
परमपिता के दया आदि गुण का मुख से आलाप किया ॥
बोले प्रेम सहित हे स्वामी ! तेरी अद्भुत लीला है ।
प्राणनाथ हे अन्तरयामी ! तेरी अद्भुत लीला है ॥

(२४)

हे जगदीश आखरी दम तक मैं तेरे गुण गाता हूं ।
अब का झुका नहीं उठने का ऐसा शीश नवाता हूं ॥
हे आनन्दस्वरूप दयामय ! तेरी इच्छा पूरन हो ।
मैं हूं अन्त समय तक निर्भय तेरी इच्छा पूरन हो ॥

——:o:——

काग़ज़ीयुग ।

(ले०—श्री युत पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ ।)

लोग इस युग को कलियुग कहते हैं पर इसको काग़ज़ी युग कहना चाहिये । संसार का कोई काम नहीं जो काग़ज़ों से सिद्ध न होता हो । रुपये, पैसे, सोना, चांदी, पास न हो तो भी काग़ज़ों (नोटों) से सारा बाज़ार ख़रीद कर ला सकते हैं । और तो और, संसार में सबसे बड़े सम्राटों की स्थिति भी इन्हीं काग़ज़ों पर निर्भर है। बड़ी २ पार्लमेण्टों की स्थिति भी इन्हीं काग़ज़ों (अख़बार) पर है । राजनैतिक दलों का एक मात्र सहारा प्राणों से भी प्यारा और आंखों का तारा भी यही काग़ज़ है । जिस गवर्नमेंट का कागज़ ज़बरदस्त वह गवर्नमेंट ज़बरदस्त । जिस दल (पार्टी) का काग़ज़ ज़बरदस्त वह दल ज़बरदस्त । संसार में सब प्रकारके विचारों को फैलाने का एकमात्र सुलभ उपाय भी काग़ज़ है। इस संसार की दशा को छोड़ भी

दिया जाय तो धार्मिक-जगत् में भी कागज़ की महिमा कम नहीं है। इस संसार में दो ब्रह्म हैं—एक शब्द ब्रह्म, दूसरा परब्रह्म (ईश्वर)। संसार के सब व्यवहार शब्दब्रह्म पर निर्भर हैं। शब्दब्रह्म परब्रह्म तक पहुंचने का एक साधन है। पर उस शब्द ब्रह्म की स्थिति ही कुछ नहीं रहती यदि वह शब्दब्रह्म इस तीसरे कागज़ब्रह्म का आश्रय न लेवे। यदि शब्दब्रह्म कागज़ब्रह्म का आश्रय न लेता तो क्या वेद, उपवेद, ब्राह्मण, अनुब्राह्मण, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, उपनिषद्, छः शास्त्र, रामायण, महाभारत और देववाणी का इतना विशाल भाण्डागार हमको देखने को मिलता? प्राचीन समय में वेदादि शास्त्रों का पठनपाठन मौखिक ही होता था और गुरु शिष्यों की यह कर्णोपकर्ण परम्परा बहुत समय तक चलती रही। उस समय लिखकर पढ़ना अधम कार्य समझा जाता था। सारा भरोसा बुद्धि पर था। लोग चाहे एक ही शास्त्र को पढ़ते पर ऐसा पढ़ते कि उसकी एक एक बात को कण्ठाग्र करते। समय ने पलटा खाया, कालचक्रवश बुद्धि का ह्रास होने लगा। बुद्धि के ह्रास के साथ साथ पुरुषार्थ का भी ह्रास होने लगा। ऋषि मुनियों को चिन्ता हुई कि अब प्रत्येक विद्या को कण्ठस्थ रखना कठिन कार्य है, रक्षा कैसे हो? उस समय—उस कठिन समय में इस कागज़ब्रह्म ने ऋषियों की चिन्ता मिटाई और तभी से वेदशास्त्र आदि कागज़ पर लिखे गये। इसलिये इस कागज़ ने हम पर असंख्य उपकार किये हैं। कागज़ न होते तो पूर्वजों के इतिहास कहां देखने को मिलते? कागज़ न होते तो संसार के पुस्तकालय की स्थिति ही कहां होती? आज भी यदि कागज़ न हो तो संसार के समस्त पत्र-व्यवहार एकदम बन्द हो जायें। बड़े से बड़े बलाढ्य सम्राट् के दफ्तर खाली दिखाई देंगे। लोग युद्ध से तंग आ रहे हैं और रातदिन "कब बन्द होगा? कब बन्द होगा?" कह कर चिल्लाते हैं। लोग अपनी बुद्धि से जो चाहें उत्तर देवें, मैं तो यही उत्तर दूंगा कि संसार के कागज़ फूंक दो और एक क्षण में युद्ध बन्द हो जायगा। और युद्ध भी क्यों हो रहा है, सिर्फ़ कागज़ के लिये। सिर्फ़ इसलिये कि कागज़ पर लिखी हुई बातों का—पूर्व निर्धारित नियमों का—शर्तों का—अर्थात् दूसरे अर्थ में कागज़ का ही निरादर जर्मनी की ओर से किया गया या अन्य किसी ओर से, इसलिये युद्ध हो रहा है। ठीक है जो कागज़ब्रह्म का दुरुपयोग या निरादर करेगा उसको ऐसा ही कठोर दण्ड भुगतना पड़ेगा। देव कागज़! तेरे कोप का कोई अन्त है या नहीं? थोड़े से निरादर के लिये तैंने यह संहार प्रारम्भ किया है,? पृथ्वी के दोतिहाई लोग एक दूसरे पर, प्राण लेने की लालसा से, टूट पड़ रहे हैं। इसलिये देवों के देव! तेरे निरादर का बहुत प्रायश्चित्त हो गया, अब तो कोप को दूर कर। दुर्योधन के पाप के कारण प्रवृत्त हुए वेणीसंहार (महाभारत) का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था कि युरोप के राष्ट्रों ने तेरे निरादर पर दूसरा वेणीसंहार प्रारम्भ कर दिया। सचमुच तेरा प्रभाव अचिन्तनीय है। हम इस युद्ध से एक ही शिक्षा ले सकते हैं कि कागज़ों का निरादर मत करो।

आर्यसमाज में इन कागज़ों का क्या हाल है? स्वामी तो अपने समय में अपने कागज़ों का अच्छा उपयोग कर गया पर क्लेश और संताप का विषय है कि दिनोंदिन इस कागज़ का अत्यन्त दुरुपयोग किया जा रहा है। कागज़ ब्रह्म का बहुत निरादर हो रहा है और इसीलिये दूरदृष्टि रखने वाले जन देख रहे हैं कि यदि समय पर ही लोग सावधान न हुए तो विचित्रसंहार प्रवृत्त होने वाला है। हम कागज़ी युग में भी कागज़ का सदुपयोग करना न सीखेंगे तो कब सीखेंगे?

एक भविष्यवादी अमेरिकन का कथन है कि यदि संसार में ऐसे ही कागज़ों का ख़र्च बना रहा तो एक शतक के पश्चात् कागज़ मिलना कठिन हो जायगा। जबतक कागज़ मिल रहा है तब तक इसको अच्छे काम में लगाकर संसार का उपकार करने में ही पुण्य है। जो लेखक अपनी लेखनी से कागज़ पर एक भी ऐसा शब्द लिख जाता है जिससे संसार को हानि होती हो तो वह अत्यन्त पापका भागी है। एक भी सम्पादक बेमौके एक भी शब्द लिख देता है तो वह बड़ा अनर्थ करता है। एक भी ग्रन्थकार यदि लोगों को अज्ञान में ले जाने के हेतु कुछ लिख बैठता है तो वह मानवजगत् का शत्रु है। जहां समुदाय के समुदाय अनर्थ पर उतरे हों वहां कल्याण कहां? वहां सुख कहां? शान्ति कहां? इसलिये मानवजाति का संसार का उपकार चाहने वालों को सावधान होकर कागज़ों को पवित्र रखने का तथा उन पर पवित्रभाव से, पवित्र उद्देश से, पवित्र शब्द लिखने का ध्यान रखना चाहिये। अब तक या तो हमारे कागज़ "मैं„ से काले हो रहे हैं या "तू" से भरे हैं। हम सब लोगों ने गत ३४ वर्षों (स्वामी जी के पीछे) एक भी ऐसा

काग़ज़ नहीं लिखा जो संसार में अमर हो जाता—ऐसा एक भी काग़ज़ नहीं लिखा जो संसार में स्थान स्थान पर जाकर आर्यों के गुणानुवाद गाता और आर्यों के लिये संसार के हृदय में एक आदरणीय स्थान प्राप्त कराता। आर्यो, सच्चे हृदय से, बुद्धि का सब बल लगाकर, यदि तुम चार लाइनें भी जिस दिन लिखोगे उस दिन चाहे "आयेंगे ख़त अरब से" गालो, "क़न्दहार में गड़बड़,, मचा डालो या "संसार की समस्त तोपों, बन्दूकों, अस्त्र और शस्त्रों को ढाल ढाल कर हवनकुण्ड और चमचियां बना बना कर प्रत्येक आर्य को मुफ्त बांट दो,, पर जब तक ऐसा नहीं किया तब तक वैसे ही आवेश के भजन गा गा कर जनता से अश्रु ढलवा ढलवा कर समय को बिताओगे तो काग़ज़ तुम्हारी वह ख़बर लेगा और हम और तुम्हारे पीछे यह २ बातें लिखा करेगा जिनका उत्तर देने के लिये संसार में हम और तुम नहीं रहेंगे। यह एक ऐसी बात है जिसकी गवाही संसार के पुस्तकालय के काग़ज़ (इतिहास) उच्चस्वर से दे रहे हैं। अब तुम्हारी इच्छा है कि चाहे काग़ज़ का आदर करो या निरादर, हम तो अपना कर्त्तव्य कर चुके।

——::०::——

सच्चा ईश्वरवादी दयानन्द।

(ले०—श्रीयुत मदनमोहन सेठ, ऐम०ए०, ऐल-ऐल०बी०, ऐम० आर० ए०ऐस०)

वैसे तो इस जगत् में असंख्य मनुष्य ईश्वर की सत्ता में विश्वास जताते हैं, किन्तु उनमें से अनेक ऐसे हैं जो अपने कार्य से यह सिद्ध करते हैं कि वह परमात्मा से विमुख हैं। अनेक ऐसे हैं जो उसकी सत्ता का ध्यान भी भूले रहते हैं। और बहुत से ऐसे हैं जिनका चित्त दुःख दर्द में ऐसा चलायमान हो जाता है कि परमात्मा के रास्ते से विमुख हो जाते तथा उस पर जितना विश्वास रखना चाहिये उतना नहीं रखते। यह दशा मामूली मनुष्यों की ही नहीं किन्तु बड़े २ सुधारक (Reformer) और मतों की नींव डालने वालों की भी है।

ईसाई मत के जन्मदाता महात्मा ईसा और मुसलमानी मत के संस्थापक मोहम्मद साहिब की गणना संसार की महान् आत्माओं में होती है, और ऐसा होना योग्य ही है। कारण कि, ईसा ने बहुत सी अच्छी बातों का उपदेश किया और लाखों नर नारियों ने उनकी शिक्षा से अपने जीवन का सुधार किया। मोहम्मद साहिब ने भी ऐसे समय में जन्म लिया था जब अरब में बहुत सी कुप्रथायें प्रचलित थीं और गृहस्थाश्रम की यहां तक बुरी दशा थी कि वहां की महिलायें गृहों की स्वामिनी थीं और वह थोड़े २ दिन के लिए अनेक लोगों से अपना सम्बन्ध करके उनको अलग कर देती थीं। मोहम्मद साहिब ने इस कुप्रथा को अरब देश से हटाया और विवाह की डोरी को केवल ४ स्त्रियों पर बांधा। अस्तु, यह दोनों महात्मा अपने २ समय में ईश्वर-वाद के ज़ोरदार समर्थक बने। मोहम्मद साहिब के अनुयायी तो उन्हें ईश्वर-वाद का एक बड़ा और अकेला सहायक बताते हैं। किन्तु जब हम इन महानुभावों के अन्तिम समय पर दृष्टि-पात करते हैं तो पता लगता है कि उनका विश्वास ईश्वर में इतना दृढ़ न था जितना उनकी शिक्षा से झलकता है। महात्मा ईसा ने तो अन्त समय में यह शब्द कहे—"ऐ मेरे परमात्मा! क्या तुमने मुझको छोड़ दिया"। मोहम्मद साहिब की अन्तिम इच्छा यही थी कि उनके प्राणान्त उनकी प्यारी पत्नी से वार्तालाप करते हुए हों।

इनके विपरीत जब हम महर्षि दयानन्द के अन्तिम समय पर दृष्टि डालते हैं तो अद्भुत दृश्य दृष्टिगोचर होता है। ऋषि अपनी कठिन बीमारी से व्याकुल होते हुये भी पवित्र गायत्री मंत्र का जाप कर "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो,, यह कह कर ही, इस असार संसार से विदा होते हैं।

उनके अन्तिम आचरण से स्पष्ट पता लगता है कि उनका ईश्वर में अटूट विश्वास था और हम कह सकते हैं कि दयानंद सच्चा ईश्वर-वादी था।

—○:०:○—

महान् पुरुष दयानन्द।

[लेखक—महात्मा नारायणप्रसाद जी, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल, वृन्दावन]

—○:०:○—

महान् पुरुष समय के साथ चलने के लिये नहीं किन्तु समय का परिवर्त्तन करने को आते हैं। इच्छित परिवर्त्तन कर लेने में जब सफलमनोरथ हो जाते हैं तब समय उनके साथ चलने लगता है। ऋषि दयानन्द एक महान् पुरुष के रूप में इस देश में आते हैं और अभीष्ट परिवर्त्तन करने का

उद्योग प्रारम्भ करते हैं। साधारण व्यक्ति, फ्रान्स के प्रसिद्ध क़ैदी की भांति, जो ४० वर्ष जेल में रहने और उसमें रहने का अभ्यासी हो जाने से, जेल से छोड़े जाने पर भी, वहां से आना नहीं चाहता था, समय के साथ चलने के अभ्यासी होने से अनेक कष्ट भोगने, भांतिभांति के दुःख उठाने पर भी जो समय का पीछा नहीं छोड़ते कब किसी परिवर्त्तन को सह सकते थे। इसीलिये दयानन्द के कार्यों का घोर प्रतिवाद हुआ।

"कन्याओं को शिक्षा नहीं देनी चाहिये क्योंकि रिवाज के ख़िलाफ़ है।" "युवा-विवाह नहीं करना चाहिये क्योंकि मर्यादा के विरुद्ध है।" "बालविधवा-विवाह नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे धर्म का नाश होता है।" "वृद्ध-विवाह करने में कोई हानि नहीं है क्योंकि यह सनातनधर्म है।" "पतितों का प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे धर्म भ्रष्ट होता है" इत्यादि २ अनेक बातें सुनाई देने लगीं और मतवादी यत्न करने लगे कि इन धीमी आवाज़ों से दयानन्द के उच्चनाद को दबा देवें। परन्तु वे भूल गये कि सुनने वाले केवल शब्द ही पर ध्यान नहीं देते किन्तु यह भी देखते हैं कि ये शब्द कहां से निकले हैं। एक ओर स्वार्थ का जामा पहने हुये आत्मिक-बल से शून्य मतवादी ! दूसरी ओर लाखों की सम्पत्ति पर लात मार सांसारिक मान और प्रतिष्ठा की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाता हुआ दयानन्द ! कहां पृथिवी की तमपूर्ण रज और कहां सूर्य का प्रकाशकण ! एक दूसरे से सम्बन्ध ही क्या ? हरिद्वार में कुम्भ का प्रसिद्ध मेला है, मतवादियों का जमाव एक ओर है तो दूसरी ओर अनेक प्रकार के साधु सन्तों का जमघटा। इन सबके मुक़ाबिले एक लंगोटबंद साधु है जिसकी पाखंड-खंडनी झंडी का फरेरा सान्मुख्य में आये हुये प्रत्येक मतवादी के हृदय को कम्पित कर रहा है। दयानन्द के उच्चनाद ने समस्त मेले की आवाज़ दबा दी। लोग हैरान थे कि यह बला कहां से आई जो हिन्दू धर्म के बेड़े को मंझधार में डुबोना चाहती है। इन भोलेभाले आदमियों को पता भी नहीं था कि मंझधार में वे तो डूब ही रहे थे, दयानन्द तो उन्हें उसी मंझधार से निकालने ही की चिन्ता में निमग्न है। अस्तु, दयानन्द के अखंड ब्रह्मचर्य, अपूर्व विद्वत्ता, अनोखे तर्क और प्रबल युक्तियों ने मतवादियों के छक्के छुड़ा दिये। वैदिकधर्म के पवित्र रूप को संसार के सम्मुख रख कर दयानन्द ने बतला दिया कि यह है वह धर्म, जिसके प्रचार के लिये वेदों का प्रादुर्भाव हुआ था। यह है वह धर्म, जिसका उपदेश प्राचीन काल के ऋषि, संसार के एक किनारे से दूसरे किनारे तक, करते थे। यह है वह धर्म जिसके आधार पर ज़िन्दावस्ता लिखी गई। यह है वह धर्म, जिसने शिक्षा से तीन सृष्टि की पहली नस्ल को उठा कर ऋषि मुनियों के उच्च आसन पर पहुंचा दिया था। यह है वह धर्म, जिससे सचाई का स्रोत समस्त संसार में बहा था। स्कैंडेनेविया के पुराने खंडहर एक ओर तो दूसरी ओर पीरू और बैबीलोनिया में पृथ्वीतल से निकाले हुये सभ्यता के चिन्ह इसी धर्म की महत्ता का संकेत कर रहे हैं। निदान दयानन्द के पवित्र उपदेशों ने भारतवासियों, नहीं नहीं संसार की विचार-प्रिय जनता के हृदयों पर अपना अधिकार जमा लिया। उनके उपदेशों ने हिन्दू मत का रूप बदल दिया। निर्दोष बालिकाओं, बालविधवाओं, शूद्र और अछूतों तक के लिये दया का भाव हिन्दू जाति में उत्पन्न कर दिया। जो बात कल पाप समझी जाती थी आज पुण्य समझी जाने लगी। जो बात कल सनातन धर्म के प्रतिकूल मानी जाती थी आज वह अनुकूल मानी जाने लगी। इसीलिये लेख के प्रारम्भ में हमने कहा था कि महान् पुरुष समय के साथ चलने के लिये नहीं किन्तु समय का प्रवाह बदलने के लिये आया करते हैं। सचमुच दयानन्द ने समय को अपना अनुगामी बना कर दिखला दिया। हतभाग होंगे वे जो इस उपदेश को ग्रहण न करेंगे। भाग्यहीन होंगे वे जो इस पवित्र स्रोत से अमृत-पान न करेंगे

——::०::——

सर्वाङ्ग-उन्नत एक अद्भुत ऋषि।

[लेखक—"राज्यरत्न,, आत्माराम जी, ऐज्युकेशनल इन्सपेक्टर।]

स्वर्गवासी लार्ड किच्नर के जीवनचरित्र पर गहरा दृष्टि-पात करने से सिद्ध होता है कि इस बाल-ब्रह्मचारी की अद्भुत योग्यता के अनेक कारण थे। यथाः—

(१) उनका जन्म आयर्लेंण्ड के एक ग्राम में हुआ था और आयर्लेंण्ड वासी धीरतायुक्त होते हैं, इसलिये यह गुण बाल्यपन में उस देशका धारण करते रहे।

(२) उनके पिता सैनिक थे और आयर्लेंण्ड में अपनी स्थिर सम्पत्ति की व्यवस्था इस बुद्धि और श्रम से की थी

कि, इतिहास-लेखक मानते हैं कि लार्ड किच्नर में जो शासन तथा सुप्रबन्ध की विचित्र शक्तियें थीं वह एक अंश तक उन को अपने पिता से दाय भाग में मिलीं।

(३) जब यह किच्नर महोदय जवान हुए तो फ्रांस में इनको 'शेनज़ी' जनरेल के नीचे काम करना पड़ा, पर, न्यूमोनिया हो जाने से यह काम छोड़ बैठे। फ्रांसीसी जनरेल शेनज़ी की फ़ौज हार गई थी। उसका प्रभाव इनके मन पर ऐसा हुआ कि, जब यह मिश्रदेश से आये तो १६ वर्ष की तैयारी रूपी तपस्या करके सौडान पर विजय पाई।

(४) विजय-सम्बन्धी जो जो योजनाएं किच्नर करते थे उनमें एक उनका वज्राङ्गी शरीर, फ़ौलादी मन और उत्तम आत्मविश्वास सिद्धि के दाता थे।

पूर्वोक्त चार बातों को लक्ष्य में रखकर हम स्वामी श्री दयानन्द के जीवन पर दृष्टिपात करेंगेः—

(१) स्वामी दयानन्द का जन्म काठियावाड़ प्रान्त के मोरवी राज्य के एक ग्राम में हुआ था। काठियावाड़ी लोग यद्यपि गुजराती बोलते हैं, पर सूरत, अहमदाबाद और बम्बई के गुजरातियों के समान भीरु नहीं होते। अफ़ग़ानिस्तान के 'पुष्टिवान' (पठान) लोगों अथवा पंजाब के वीर जाटों की उपमा हम काठियावाड़ी प्रजा से दे सकते हैं। स्वामी जी के धैर्य्य गुण का एक कारण काठियावाड़ी प्रजा थी, जो बाल्य-पन में उनके मन पर शुभ प्रभाव डालती रही।

(२) स्वामी जी के पिता ब्राह्मण थे। गुजरात, दक्षिण और काठियावाड़ के ब्राह्मण, उत्तर हिन्द के ब्राह्मणों से, एक बात में, विशेष होते हैं और वह यह कि इनको वेदपाठ में बहुत रुचि होती है। इसके अतिरिक्त गांव गांव के अन्दर उतनी योग्यता के अनेक पण्डित मिल सकते हैं जो योग्यता आजकल के एक शास्त्री परीक्षा पास में भी नहीं होती। आज से ९३ वर्ष पूर्व, जब स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ, काठियावाड़ तथा गुजरात के ग्रामों में संस्कृत के अनेक विषयों के भारी पंडित हुआ करते थे। इस बात की साक्षी में, हम रायबहादुर द्वारकादास हरगोविन्ददास कांटावाला, पूर्व विद्याधिकारी, बड़ोदा राज्य, के उस लेख की ओर पाठकों की रुचि दिलाना चाहते हैं जो उन्होंने गुजराती व्याकरण की भूमिका में लिखा है।

स्वामी जी की जीवनी पर दृष्टि-पात करने से हमें निश्चय होता है कि २० वर्ष की आयु में अर्थात् जब वह घर से भाग निकले तो उस समय यजुर्वेद की संहिता उनको कंठ थी और संस्कृत की योग्यता, शास्त्री परीक्षा पास किये हुए, पंडितों से कहीं बढ़ कर थी। उन्होंने योगियों से योगाभ्यास बीस वर्षों की भारी तपस्या में सीखा। उन्होंने वेदार्थ करने का रहस्य अपने गुरु से मथुरा में प्राप्त किया। वैदिक साहित्य का मथन करने की शैली, उनको ऋषिवर स्वामी व्रजानन्द की कृपा से प्राप्त हुई।

(३) हम देख चुके हैं कि, वीर-शिरोमणि किच्नर को वीरता के भाव तथा युद्ध-कौशल का परिज्ञान फ्रांस से उस सेना की हार द्वारा अनुभव हुआ था जिसमें वह कुछ काल भरती रहे थे।

स्वामी दयानन्द के आगे उनकी बहिन और चचा की मृत्यु ने विचित्र समस्या रखदी और उन्हें

अमृत का अर्थी

बना दिया। जिसके लिये उसने बालब्रह्मचारी बन, नग्न रह, एकांत पहाड़ों में योगाभ्यास कर २० वर्ष तक महान् तप किया जब तक कि उन को आत्मा के अमर होने का परिज्ञान नहीं हुआ। जब उनको योग की एक महान् सिद्धि आत्मदर्शन की प्राप्त हुई तब ही वह निर्भय हो गये। तब ही उनको सत्य कथन के आगे प्राणों को भी त्याग देना तुच्छ प्रतीत होने लगा। तब ही वह ऋषि पद के अधिकारी हुए।

(४) हम श्रीमान् लार्ड किच्नर को वज्रांगी, फ़ौलादी मन वाला तथा दृढ़ स्वात्म-विश्वासी पाते हैं और यह गुण उनकी सिद्धि के कारण माने जाते हैं।

राममूर्ति बलवान् हैं पर पण्डित नहीं। भारत में अनेक भारी पण्डित हैं पर साथ ही वह बलवान् नहीं।

स्वा० दयानन्द पहिला भारतीय बलवान (पहलवान) था जिसने राजा विक्रमसिंह की दो घोड़े की गाड़ी को रोक दिया।

इसलिये जहां वह राममूर्ति समान वज्रांगी था, वहां उसके साथ ही परीक्षा पास शास्त्री नहीं किन्तु "सच्चे वैदिक साहित्य" का महान् पंडित था।

निःसन्देह दयानन्द का मन अलंकार की रीति से, फ़ौ-

ज्ञादी मन था। उसकी प्रबल इच्छा को मौत भी तो नहीं जीत सकती थी। मृत्यु की भी शक्ति नहीं थी कि उसको सदैव और सर्वत्र सत्य कहने से रोक सके।

उनका आत्म-विश्वास अपार था। काशी-शास्त्रार्थ करने के पीछे ऋषि भारतवर्ष में सत्युपदेश करने की तैयारी करते हैं और केवल कोपीन में छः आने के पैसे, और वह भी इसलिये कि उनसे काग़ज़ ख़रीद श्रोताओं को बुलाने के लिये विज्ञापन लिखेंगे।

सच तो यह है कि वह सर्वांग-उन्नत एक आदर्श ब्राह्मण वा ऋषि थे। ब्राह्मण के अर्थ वेद और ईश्वर के जानने वाले के हैं। ऋषि के अर्थ मन्त्रद्रष्टा के हैं। उनका अपूर्व तथा युक्ति-युक्त वेद भाष्य दर्शा रहा है कि वह निःसंदेह एक ऋषि थे।

जिस प्रकार वह सर्वांग-उन्नत ऋषि थे, ईश्वर करे कि भारतीय प्रजा भी वैसा होने का यत्न करे।

——:o:——

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और आर्यसमाज।

[ले०-एक सनातनधर्म्मी, एम० ए०।]

—::o::—

जिस समय भारतवासी विद्या के अभाव से अपने प्राचीन गौरव, ऐश्वर्य और वैभव को भूलकर घोर निद्रा में सो रहे थे, और उनकी प्राचीन उज्ज्वल सभ्यता, उनका प्राचीन मुक्ति-प्रद धर्ममार्ग, प्राचीन गौरवशाली साहित्य, उनकी प्राचीन संस्कृत भाषा, प्राचीन शुद्ध और शान्तिप्रद जीवन-प्रणाली एवं प्राचीन उत्कृष्ट, प्रशंसनीय प्रथाएँ, पाश्चात्य शिक्षा और विदेशीय धर्म विचारों की धारा-प्रवाह में बही जा रहीं थीं, उस समय जिस महात्मा ने अपना सांसारिक सुख त्याग और अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर उज्ज्वल, निर्मल, दिव्य, महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली वैदिक ज्ञान के गौरव की ध्वनि करी और इस निद्रा को तोड़ कर भारत की अधोगति के वेग को रोका, वह श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ही थे।

अविद्या-जनित अन्धकार को वेदों के प्रचण्ड ज्ञानप्रकाश से छिन्नभिन्न करना, धर्मतत्त्व-शून्य पाश्चात्य शिक्षा की नास्तिकता को ऋषि महर्षियों के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत बताकर हटाना, भारत के धुरन्धर तत्त्व-वेत्ताओं के गौरवशाली दार्शनिक सिद्धांतों के महत्त्व को दिखाना, भारत की सन्तानों के मनों में भारत के प्राचीन गौरव का चित्र गूढ़ाङ्कित कर देना, धर्म के नाम में छिपे हुये पाखण्डों को निर्मूल करना, भारतीय सदाचार का उपदेश कर सच्चे सामाजिक सुधार की नींव रखना, संस्कृत-साहित्य की महिमा एवं उत्कृष्टता दिखाकर उसके पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न करना, विदेशीय तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के ऊपर हिंदी भाषा की श्रेष्ठता सिद्ध कर उसका प्रचार करना, देशभक्ति के सच्चे भाव आर्यसन्तानों के हृदय में विकसित करना—यह सब काम स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का ही था। यह महात्मा संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान थे, वेदों के पूर्ण ज्ञाता थे, प्राचीन सदाचार की आदर्शमूर्ति थे, धार्मिक विषय के परमोजस्वी वक्ता थे, प्राचीन भारतीय सभ्यता के अनूठे पथ-प्रदर्शक थे और भारतभूमि के सच्चे भक्त थे। इन महानुभाव को, भारत को अज्ञान-सुषुप्ति अवस्था से जगानेवाला, कहना चाहिये। यह इन्हीं का काम था कि शताब्दियों के सोये हुये भारतवासियों को वेदध्वनि कर जगा दिया। इनके लिखे कई ग्रन्थ हैं, जिनमें सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका बड़े प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़ने से वेदों के गौरव का परिचय होता है, इस पुस्तक में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाया है कि वेद भूमण्डल की समस्त विद्या और कलाओं के ज्ञान का भाण्डार हैं। यदि स्वामी जी और कोई ग्रन्थ नहीं लिखते, केवल ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ही लिखकर छोड़ जाते, तब भी उनका नाम अमर ही रहता। यह ग्रन्थ बड़ा गौरवशाली है। जिस कार्य को स्वामी जी ने उठाया था, उसकी सफलता के अंकुर उनके अल्पजीवन काल में ही दृष्टिगोचर होने लगे थे। उनके पीछे तो ये एक विशाल वट वृक्ष के रूप में पल्लवित होगये। इस वृक्ष की अगणित शाखाएँ भारतभूमि के सभी नगर और क़सबों में फैली हुई हैं। भारतवर्ष की सब धार्म्मिक संस्थाओं में आर्यसमाज बड़ा प्रभावशाली है।

ब्रह्मसमाज, थियोसफ़ीकल सोसाइटी आदि को ऐसी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। आर्यसमाज में केवल जन-संख्या ही अधिक नहीं है, बल्कि इसमें कार्यसफलता की प्रचुरता भी है। इस समाज ने अनेक स्कूल, कन्यापाठशालायें, अनाथालय, पुस्तकालय एवं आश्रम स्थापित किये हैं, जो अपना २ कार्य

पूर्ण उत्साह से कर रहे हैं। दयानन्द ऐंगलो-वैदिक कालेज बनाना, उसकी प्रशंसनीय समुन्नति करना और उसे पंजाब के सब कालेजों में आदर्श बना कर दिखा देना, इसके सिवा गुरुकुल स्थापित कर भारत संतानों को प्राचीन समय की ब्रह्मचर्यमर्यादा सिखाना, आर्यसमाज के महत्कार्यों में है। इस समाज ने विद्याप्रचार और सामाजिकसुधार में बड़ा भाग लिया है। हिंदी प्रचार में इसका काम कुछ कम नहीं है, क्योंकि समाज ने हिंदी में सहस्रों पुस्तकें छपाई हैं और इसके उपदेशक हिदी में ही व्याख्यान देते हैं। आर्यसमाज के अगणित सभ्यों में गाढ़ मेल है, ये एक दूसरे की सहायता निरंतर करते रहते हैं। इनमें कार्य-सम्पादन-बुद्धिमत्ता बड़ी तीव्र है। परोपकार के कार्य में ये लोग सदा ही लगे रहते हैं। समाज के सभ्यों में ऐसे २ अनेक गुण हैं जो अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। दूसरी समाजो के सभ्यों को इन सब गुणों का अनुकरण करना चाहिये।

भारत की दशा परिवर्तन करने में ऐसी २ समाजें ही समर्थ हैं, अन्य नहीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि इन समाजों की निरंतर चेष्टाओं से भारतवर्ष फिर वैसा ही हो जाय जैसा कि वह प्रचीन काल में था और जिसकी प्रशंसा भागवत पुराण में इस तरह लिखी है:—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गाख्य फलार्जनाय,
भवन्ति भूमिः पुरुषाः सुरत्वात्॥

———:०:———

"वीर-भोग्या वसुन्धरा।"

(लेखक—कविवर श्रीयुत पं० श्रीधर पाठक।)

प्रथित पुरातन नाम भूमि का वसुन्धरा है
क्योंकि विश्व भर का इसमें सर्वस्व भरा है
उसका परम पुनीत अंग प्रिय भरतदेश है
जिसमें वसुधा के सर्वस का समावेश है
उस सर्वस के उपयोग के अधिकारी हैं हम सभी
इस वसुन्धरा के वीर सुत, बल-धारी, हैं हम सभी

———:०:———

ऋषि दयानन्द शाहपुरा में।

(लेखक— राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह वर्मा बहादुर, के० सी० ऐस० आई०, शाहपुराधीश।)

श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने प्रचार-काल में इस शाहपुरा की भूमि का भी अपने शुभागमन से कृतार्थ किया था। यहां की भूमि उनके चरणकमलों से, भवन उनकी तेजमयी दिव्यमूर्ति से, श्रोतृजनों के कर्णविवर उनकी सुधास्यन्दिनी, सन्मार्ग-प्रवर्त्तिनी, सदुपदेशमयी वाणी से पवित्र किये जा चुके हैं।

मैं अपने अहोभाग्य समझता हूं कि मैं ने अपने जीवन में प्राचीन ऋषियों के प्रतिनिधि एक संन्यासी का अवलोकन किया। और मुझे यह भी अभिमान है कि मेरी रियासत में ऋषिवर ने पदार्पण किया था।

स्वामी जी महाराज के, यहां पधारने से मेरे धार्म्मिक विचारों में बहुत परिवर्तन आया—जब तक वे यहां रहे, मैं उनसे शिक्षा लेता रहा। ऋषि ने मुझे राज-कार्य के चलाने की सुन्दर विधि पर भी उपदेश दिये थे। मुझे ऋषिवर ने मनुस्मृति और योग दर्शन पढ़ाये थे।

ऋषि के अन्दर जहां अन्य अनेक अलौकिक गुण विद्यमान थे, वहां उनमें समझाने की शक्ति भी बड़ी प्रबल थी।

मुझे आत्मा और परमात्मा के विषय में कुछ सन्देह रहा करता था—ईश्वर के अस्तित्व में मेरा मन सन्देह-दोला में आरूढ़ रहता था। मेरी इन सन्देह-ग्रन्थियों के खोलने के लिये ऋषिवर ने मुझे योगदर्शन पढ़ाना प्रारम्भ किया। उनके इस पवित्र और परोपकारमय अध्यापन कार्य से मेरे ईश्वर-विषयक सम्पूर्ण सन्देह निवृत्त हो गये। उनके समझाने की विधि बड़ी सुन्दर होती थी।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द के, साधारणतया सारी आर्यजाति पर और विशेषतया मुझ पर, किये गये भिन्न २ उपकारों के कारण, मैं उन्हें सदैव स्मरण रखता हूं।

महर्षि-महिमा ।

[लेखक—कविराज पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ।]

(दोहा)

शङ्कर के प्यारे बने, वैदिक-धर्म्म प्रचार ।
धन्य "दयानन्दर्षि" ने, सब का किया सुधार ॥

[भु० प्र० मिलिन्द-पाद ।]

* १ *

जहां घोषणा राम के नाम की है ।
जहां कामना कृष्ण के काम की है ॥
अहिंसा जहां शुद्ध बुद्धार्य की है ।
प्रशंसा जहां शङ्कराचार्य्य की है ॥
वहां देव ने दिव्य योगी उतारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* २ *

अनायास चेता गया एक चूहा ।
गिरी भूल, ऊंची चढ़ी उच्च ऊहा ॥
जड़ीभूत भूतेश की भक्ति भागी ।
महादेव के प्रेम की ज्योति जागी ॥
उठे इष्ट की ओर सीधे सिधारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ३ *

हितू, बन्धु, माता, पिता, मित्र छोड़े ।
लखे मुक्ति की खोज में बन्ध तोड़े ॥
भले भोग त्यागे गही योगशिक्षा ।
फिरे देश में मांगते धर्म-भिक्षा ॥
बने भद्रिका-भारती के दुलारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ४ *

टिका टेक ठाना उसी ठौर जाना ।
जहां ठीक पाना सुनाया ठिकाना ॥
मिले योगियों से निकाली कमाई ।
मिटा अन्ध-विश्वास सूझी सचाई ॥
कहाये प्रज्ञानन्द के शिष्य प्यारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ५ *

मनो भावना साधना में मिला दी ।
सुधा ध्यान को धारणा की पिलादी ॥
समाधिस्थ हो ब्रह्म से लौ लगाई ।
मिली सम्पदा सिद्धियों की न भाई ॥
टिके एकता में मिटा भेद सारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ६ *

निहारी महा चेतना की महत्ता ।
इसी में जुड़ी जानली जीव-सत्ता ॥
उघारी उपादान की योग-माया ।
जगज्जाल में तीन का मेल पाया ॥
बसे विश्व की विश्वता से न न्यारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ७ *

रहे आदि से अन्त लों ब्रह्मचारी ।
पढ़ी वेद-विद्या अविद्या बिसारी ॥
कहा सज्जनों से बनो स्वर्गभोगी ।
भजो सच्चिदानन्द को मुक्ति होगी ॥
न होगा कभी आलसी यों पुकारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ८ *

लुटेरे मतों का किया ढांच ढीला ।
लताड़ी छुआछूत की छद्म लीला ॥
दिखा दोष पाखण्ड का खोज खोया ।
खलोपाड़ खोटे खलों को खिगोया ॥
प्रमादी पछाड़े किसी से न हारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* ९ *

प्रसादी सदा प्रेम की बांटते थे ।
घृणा से किसी को नहीं डांटते थे ॥
सजीला सदाचार को जानते थे ।
न धोखा किसी चिन्ह को मानते थे ॥
कभी वस्त्र धारे कभी थे उघारे ।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

* १० *

न खाता किसे काल कूटस्थ प्रत्ता।
बही सिन्धु में बून्द की भक्ति मत्ता॥
दिया न्याय का नीचता ने बुझाया।
दया और आनन्द का अन्त आया॥
दिवाली हुई हाय! होली पधारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे॥

——:०:——

स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्मारक।

(ले०—श्री० मुं० ज्वालाप्रसाद जी, बी० ए०, ऐलऐल० बी०।)

स्वामी दयानन्द का सबसे बड़ा और जीवित स्मारक तो आर्यसमाज के सभासद हैं, परन्तु इनमें भी केवल वे लोग धन्य हैं जिन्होंने स्वामी जी के मिशन को अपने सिद्धान्तों का उद्देश बना लिया है—जो सिद्धान्तों की ख़ातिर किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं हैं। मित्र चाहे शत्रु बन जावें, बिरादरी चाहे उनको पृथक् करने की घोषणा दे दे, वर्षों के प्रेमी साथ छोड़ दें, विपत्ति पर विपत्ति आवें लेकिन वह धर्म से विमुख नहीं होते। सत्य सिद्धान्तों पर वे उसी प्रकार अचल रूप से दृढ़ रहते हैं जिस प्रकार चट्टान से विरोध की लहरें आकर सर टकरातीं परन्तु अन्त को निष्फल ही लौट जाती हैं। श्री पण्डित गुरुदत्त जी से एक बार जब किसी ने यह प्रश्न किया था कि आप स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र क्यों नहीं लिखते, तो उन्होंने यह उत्तर दिया था कि मैं उन का जीवनचरित्र पुस्तक रूप में लिखना नहीं चाहता वरन् अपने जीवन में उसको चरितार्थ करना चाहता हूं। शिक्षा ग्रहण करने के लिये कैसा उत्तम उत्तर है। परन्तु हम इस बात का ध्यान नहीं रखते कि हमारी सारी प्रतिज्ञायें और व्याख्यान प्रभावरहित हैं यदि हम स्वयं उन पर अमल नहीं करते। हमारे सिद्धान्त चाहे जितने अच्छे हों, हमारी दलीलें चाहे जसी मज़बूत हों, हमारे उच्च मस्तिष्क कदाचित् अपने सूक्ष्म तर्कों से लोगों को अचम्भित कर दें लेकिन दूसरों के दिलों पर हम उसी समय अधिकार जमा सकते हैं जब हमारा कैरेक्टर उनसे श्रेष्ठ हो—हमारा जीवन उनके लिये आदर्श हो। धन्य हैं वे लोग और वे संस्थाएं, जिन्होंने विद्या-प्रचार के साथ साथ चरित्र-गठन् (Character-building) को भी अपना मुख्य उद्देश बनाया हुआ है। हमारे प्रांत का 'गुरुकुल वृन्दावन' धन्य है क्योंकि उस का मुख्य उद्देश यही है। डी० ए०-वी० कालेज का प्रस्ताव, जो इसी सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर किया गया है, एक मंगलप्रद प्रस्ताव और स्वामी दयानन्द का सच्चा स्मारक है। आज से २०–२५ वर्ष पूर्व यह प्रस्ताव किया गया था परन्तु, खेद है कि अभी तक हम कालेज स्थापित न कर सके। हमारे बहुत से महानुभाव, जो कालेज के प्रस्तावकर्ता थे, अपने मनोरथ को हृदय में रख कर ही चल बसे और जो अभी जीवित हैं, उनकी हार्दिक इच्छा है कि कब उनका मनोरथ पूर्ण होता है?

यादगारे ज़माना हैं ये लोग।
सुन रक्खो तुम, फ़साना हैं ये लोग॥

ऐसे महानुभावों के साहस और उत्साह दिलाने से कालेज के आन्दोलन में फिर नवजीवन संचार हुआ है और आशा है कि शायद यह प्रस्ताव शीघ्रही पूरा हो जावे। कालेज में बी० ए० तक क्लास खोलने की आज्ञा लेने के लिये विश्व-विद्यालय में प्रार्थना-पत्र भेज दिया गया है। आशा है कि दो एक महीने में यूनीवर्सिटी के निर्णय की सूचना मिल जाने पर जुलाई सन् १६१८ से कालेज खुल सकेगा। ज़मीन भी उपयुक्त मिल गई है और इमारत का काम भी जल्द शुरू होगा। चंदा वसूल करने का भी यत्न हो रहा है। लेकिन क्या इस प्रस्ताव की पूर्ति सरल कार्य है? कदापि नहीं। इसके लिये न केवल बड़े धन की ही आवश्यकता है, प्रत्युत उससे अधिक योग्य और सच्ची लगन वाले मनुष्यों की भी ज़रूरत है। स्वामी दयानन्द का नाम इस महत्वपूर्ण प्रस्ताव के साथ संयुक्त है, और हमारा विश्वास है कि उनके नाम में वह आकर्षण शक्ति और गुण है जो हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, और करेगा।

याद रखिये, संसार में वे ही मनुष्य कृतकार्य होते हैं जिनको अपने उद्देश पर पूरा विश्वास है। जो निरुत्साह को पास नहीं आने देते। जो दुःख और विपत्ति में, सुख और संकट में अपने आदर्श को सम्मुख रखते हैं और कभी भूले से भी यह शंका नहीं करते कि उनको अपने मनोरथ में असफलता होगी। असफलता उनके मनोरथों को और भी सु-दृढ़

कर देती है-कठिनता और रुकावटें उनको अधिक उत्साह और श्रम करने की ओर प्रेरित करती हैं ।

ऐसे लोगों को अपने ऊपर पूरा भरोसा होता है । मूर्खों की कटाक्षयुक्त समालोचना और विद्वानों के सन्देह उनको अभीष्ट मार्ग पर जाने से नहीं रोक सकते । संसार उनकी प्रतिष्ठा करे या न करे, परन्तु कृतकार्यता उनके चरण अवश्य चूमती है । वह आत्म-प्रशंसा की परवाह नहीं करते, न सांसारिक लालच और प्रलोभन उन को अपनी ओर खींच सकते हैं । उनको कोई दूसरी ही शक्ति प्रेरित करती है और उनका अन्तःकरण उनको यह विश्वास दिलाता रहता है कि उन्होंने अपने कर्त्तव्य को पूरा किया । बस, उनके लिये यही पर्याप्त पारितोषिक है ।

पाठकगण, आइये और इसी भाव (Spirit) से प्रेरित हो कर महाविद्यालय रूपी महान् यज्ञ में सम्मिलित हो जाइये और यश के भागी बनिये ।

——:०:——

आर्यसमाज का भविष्य ।

[लेखक-श्रीयुत कुंवर चांदकरण शारदा, बी०ए०, एल-एल०बी०]

सौ लगी, सर्वत्र है आशा यही ।
नाथ ! होगी फिर वही भारतमही ॥

——:०:——

एक कवि के उपरोक्त वचन अब शीघ्र ही सत्य होने वाले हैं । भारत-सचिव मिस्टर मांटेग अब यहां पधारने वाले हैं । जो आर्यसमाज, आर्यगौरव और स्वर्गमयी भारतभूमि के गीत गाता गाता थक गया था उस के उद्देशों की पूर्णकला अब दृष्टिगोचर होने लगी है । भारतवर्ष में आर्यसमाज ने एक अपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी है । स्थान स्थान पर जातीय सभायें हो रही हैं । चारों ओर "स्वराज्य" के जयजयकार के शब्द सुनाई दे रहे हैं । जातीय-जीवन से सारा भारत गूंज उठा है । स्वतन्त्रता देवी की उपासना और स्वार्थत्यागियों का सम्मान करना महर्षि ने हम को खूब ही सिखला दिया है । महर्षि ने हमारे जीवन के कर्मयोग को हम को भली प्रकार दर्शाया । प्रत्येक आर्यपुरुष ने, I wake and found that life was duty इस वाक्य को भले प्रकार समझा । कोरे प्रस्तावों पर सन्तुष्ट न हो कर उन्हों ने कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ हो विद्याप्रचार कर देश को जागृत किया । धर्म में रंगे हुये आर्यपुरुषों ने ऐसा "धार्मिक-जीवन" (Moral atmosphere) उत्पन्न किया है कि रिश्वत लेने वाले, ग़रीबों पर अत्याचार करने वाले, व्यभिचारी, चोर और गुंडे आर्यसमाज का नाम लेते ही थर्रा उठते हैं । कभी सरकारी दबाव में आ कर धर्म से न डिगने वाले, देश, धर्म और न्याय के लिये चक्रवर्त्ती राजा तक से निर्भय रहने वाले ये ही शेर-दिल आर्य हैं । प्रिय आर्यपुरुषो, कठिन से कठिन कार्य में सब से आगे आ कर सेवा करने का सौभाग्य आप ही को प्राप्त है । मुसीबतों को झेलने में प्रसन्न होना, धर्म के लिये बलिदान होना, जान जोखम में डाल कर देश भाइयों की सहायता करना, दूसरे भाइयों में जातीय-जीवन उत्पन्न करने के लिये बलिदान होने के भावों को जागृत करना आप जैसे शेरदिलों का ही कार्य है । प्रत्येक शुभ कार्य की सहायता और बुरे कार्यका विरोध करना आप का ही मुख्य कर्त्तव्य है । कभी भी अपने हृदय में यह भाव न आने दो कि हम थोड़े हैं । जब जब नगरों में कोई सुधार का कार्य करने का प्रश्न उठता है तो उत्तर मिलता है कि इस से तो फ़लाने साहब अप्रसन्न हो जावेंगे । 'म्याऊं' का मुंह कौन पकड़े ? परन्तु स्मरण रहे, आर्य पुरुष ही सदा से 'म्याऊं' का मुंह पकड़ते रहे हैं । किसी नगर में सार्वजनिक-जीवन उत्पन्न होने के इतिहास को उठा कर पढ़लें आप को यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि आर्य पुरुषों ने ही सार्वजनिक-जीवन उत्पन्न किया है । इन्हों ने विधवा-विवाह को प्रचलित कर कितनी देवियों का उपकार किया है । बाल-विवाह और वृद्धविवाह बन्द करा कर ब्रह्मचर्य का कितना महत्व बढ़ाया है । स्कूल और वाचनालय खोल कर कितना विद्याप्रचार किया है । जातीय-सेवा के सब से आगे युद्ध करने वाले वीर आर्यसिंहो ! इसी प्रकार बराबर स्थिरता से कार्य करते जाओ । आज के शुभ दिवस से द्विगुणित उत्साह बढ़ाओ, कर्त्तव्यपथ पर आरूढ़ रहो । यह निश्चय रक्खो कि संसार में एकमात्र वैदिक धर्म ही जीवित रहेगा और यही सारे संसार का सार्व-भौमिक धर्म होगा । संसार के सारे महान् से महान् मन्दिरों, गिरजों और मसजिदों पर पवित्र "ओ३म्" के झंडे लहरावेंगे और संसार के बड़े से बड़े बादशाह और चक्रवर्ती राजा आर्यसमाजों में आ कर आज के पवित्र दिवस महर्षि के गुणगान करने में अपना गौरव और सौभाग्य समझेंगे । "बोलो दिग्विजयी महर्षि दयानन्द की जय !"

——:०:——

* कर्ण कलाप *

[लेखक—श्रीयुत कर्ण कविजी ।]

[१]

निरन्तर आर्य्य समाजोद्यान,
फले फूले हे आर्य्य सुजान !
प्राप्त कर सादर उच्चस्थान,
करो मिल इसे प्रेम-जल दान ॥

[२]

परस्पर रक्खो दृढ़ अनुराग,
व्यर्थ ही भड़काओ मत आग ।
धार उर दिखलाओ स्फूर्ति,
सहज हो आर्य्य-कार्य्य की पूर्ति ॥

[३]

प्रकट में लक्ष्य-दृष्टि हो एक,
घड़े में मत ही हों न अनेक ।
मिटा दो मत पन्थों का जाल,
फेर भी ला दो वैदिक-काल ॥

[४]

अनेकों गुरुकुल आवें दृष्टि,
आर्य्यजन पावें हित की वृष्टि ।
पान कर धर्म्मामृत, पर्य्याप्त—
करो उद्योग-शक्ति सम्प्राप्त ॥

[५]

चुनो शुचि-साधन-तरु के फल
न निज पथ में बिछने दो शूल ।
दिखादो होना पुरुष-प्रधान,
दिखादो होना महा-महान ॥

[६]

उड़ा दो धर्म्म-पताका फेर,
न होनेदो अभीष्ट में देर ।
भगादो मत वालों की भूल,
सिखादो सबको सिख सुख मूल ॥

——:०:——

एक अद्भुत दृश्य और त्यागी दयानन्द ।

(ले०—श्रीयुत प्रोफ़ेसर ज्वालाप्रसाद जी, गु० कु० महाविद्यालय ।)

—*○:०:○*—

जहां पर्वतश्रृङ्खलायें अपनी कठोर कुक्षि में से नेत्रों को शान्त तथा आह्लादित करनेवाली जान्हवी को मानो जन्म देकर इस वाह्यजगत् में नित्य प्रादुर्भूत करती हैं और चारों ओर की प्राकृतिक छटा मानो इस जन्मोत्सव को सदा मनाती हुई प्रतीत होती है, ऐसा हरिद्वार का रमणीक पुण्य-स्थान है और विक्रमीय संवत् १९२३ के कुम्भ का पर्व। दिगदिगान्तरों से मनुष्य-समूह उमड़ २ कर इस ओर ही चला आरहा है। किसलिये ? इसी हेतु कि नियत पुण्य तिथि पर गंगा माता के जल में एक डुबकी लगाकर परम पद के अधिकारी बनें। बस, यही कामना है, जो भोलेभाले हिन्दू-वृन्द को इस ओर ढकेले दे रही है। हां, इन भोलेभालों को लूटने और ठगने वालों की भी कमी नहीं है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि हरिद्वार की पुण्य प्राचीन भूमि इस समय चारों ओर राजा, रईसों के डेरों, साधु-फ़क़ीरों के अखाड़ों, यात्रियों के नानादेशीय चित्र-विचित्र समूहों से लदी हुई है।

इसी भीड़भाड़ में हृषिकेष के मार्ग में सप्तस्रोत के पास एक बाड़ा बना है, जिसमें कुछ छप्पर पड़े हैं। इस बाड़े में दो तीन संन्यासियों ने कुछ अन्य मनुष्यों सहित अपना डेरा जमाया हुआ है। एक पताका लहरा रही है जिस पर लिखा है—"पाखण्ड-खण्डिनी"। "पाखण्ड-खण्डिनी" यह क्या ? यह किसका साहस है जो इतने प्रबल पाखण्डान्ध-जन-समूह के विरुद्ध, पाखण्डगढ़ में ही, दलबन्दी किये उठा है। बतलाने की आवश्यकता नहीं कि यह उसी आदित्य ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द का आत्मिकबल है, जिसने 'विद्यातपोभ्यां भूतात्मा' के अनुसार अपने आपको तैयार किया है और अपनी तीव्र शक्ति से पाखण्ड को खण्ड खण्ड कर डालने का बीड़ा उठाया है। इस स्थान पर बस पाखण्ड का खण्डन ही होता है और सहस्रों नरनारी उपदेश सुनने आते और नाना प्रकार के भावों से प्रभावित हो कर चले जाते हैं। लोग तो इस विचित्र बाबा (स्वामी दयानन्द) को देख कर चकित होते ही हैं, परन्तु यह 'बाबाजी' भी इन भोलेभाले बुद्धिशून्य लोगों की दीन हीन दशा को अच्छे प्रकार देख लेते हैं और मन ही मन इनके

लिये अश्रुपात करते हैं। कहां वह प्राचीन समय का ब्रह्मविद्या का उपदेश और कहां यह पण्डों की लूटमार! कहां ब्रह्मवित् की समाधि और कहां यह गंगा की डुबकी! कहां वह आर्य शान्ति और यज्ञों की सुगन्ध और कहां इन पाखण्डियों का कलह और गांजा चरस का दुर्गन्ध! इत्यादि २ भयानक दृश्य को देखकर उनका दयार्द्र हृदय विह्वल हो जाता है। मन ही मन विचारने लगते हैं--क्या मैं कुछ कर सकता हूं, क्या इस अधोगति के गर्त में से निकाल कर इन लोगों को ला सकता हूं? इत्यादि २ प्रश्न उठने लगते हैं। आत्मा से उत्तर मिलता है—हां। परन्तु दयानन्द! इस कार्य के लिये अभी विशेष तप की विशेष तैयारी की आवश्यकता है। बस, इस निश्चय पर पहुंचना था कि यह दृढ़ात्मा महात्मा तदनुकूल कार्य करने के लिये तैयार हो जाते हैं। व्याख्यान देते देते "सर्वं वै पूर्णं ७ स्वाहा" कह कर व्याख्यान समाप्त कर देते और जो कुछ द्रव्य वस्त्रादि उनके पास है त्याग देते हैं। क्यों न हो "परोपकाराय सतां विभूतयः ,, सज्जनों की विभूति परोपकार ही के लिये होती है। इस प्रकार त्याग-मूर्ति, कोपीनधारी दयानन्द एकाकी देश-संशोधन रूपी महायज्ञ की पूर्ति के लिये गंगा-तट पर विचरने के लिये चल पड़ते हैं।

ठीक है, जो दूसरों को बनाना या सुधारना चाहता है सब से पहले उसे स्वयं बनना और सुधरना आवश्यक है, नहीं तो 'अन्धे न अन्धा नीयमानाः, अन्धों के पीछे अन्धों के चलने की सी गति होती है। स्वामी दयानन्द इस नियम को पूर्णतया समझते थे, इसीलिये तो उन्होंने इतनी तैयारी की, जिस तैयारी का फल हमारे सामने है। ईश्वर करे, हम लोग जो उनके अनुगामी हैं, इस सिद्धान्त के महत्व को समझें और तदनुकूल कार्य करें। जहां हम लोगों के बड़े २ हौसले और आदर्श हैं वहां हम यह भी समझें कि इसकी पूर्ति कोई बाल-क्रीड़ा नहीं, उसके लिये गूढ़ गम्भीर विचार, सदाचार, अथक परिश्रम तथा त्याग और बलिदान की पहले आवश्यकता है। ईश्वर हमें इन गुणों को धारण करने की शक्ति दें जिससे हम उस ऋषि के सच्चे शिष्य कहलाने के अधिकारी बन सकें।

——:०:——

--अगर बीनी कि ना बीना ब चाहस्त,
अगर ख़ामोश बिन शीनी गुनाहस्त। -शेख़सादी।

स्वामी दयानन्द के जीवन से शिक्षा।

(ले०-श्रीयुत पं० शिवनारायण शुक्ल, बी०ए०, एल-एल० बी०।)

—०—

दीपमालिका का दिवस आर्यसमाज के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। समाज के मुख्य २ समाचार-पत्र इस पर ऋष्यङ्क निकालते हैं, यह भी बड़ी अच्छी बात है। परन्तु स्वामी दयानन्द के जीवन से जो शिक्षा हमें मिली है उसको हम धीरे धीरे भुला रहे हैं, यह कितने खेद की बात है। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन से जो शिक्षायें दी हैं, उनमें मुख्य उनकी

निर्भयता

है। सनातनियों, ईसाइया, मुसलमानों, जैनियों निदान सभी मतावलम्बियों से उनकी मुठभेड़ हुई, वह अकेला था। न बन्दूक़, न तमञ्चा, न दस बीस आदमी उनके साथ हर समय रहते थे, परन्तु उनको कभी इनसे भय नहीं हुआ। धर्म का प्रचार करते हुए वे सदैव यह समझते थे कि आत्मा न मरती है, न मारी जा सकती है; शरीर की चाहे जो दशा कर डालो। उनका कहना था कि धर्म बड़ी अनमोल वस्तु है। अगर शरीर देकर धर्म की रक्षा हो सकती है तो उसे देदो धर्म नहीं।

अब ज़रा हम अपनी ओर निहारें। हम घर की स्त्रियों से डरते हैं, पड़ोसियों से डरते हैं, बिरादरीसे डरते हैं, पुलीस के कान्स्टेब्ल् की सूरत से तो हमें बड़ा भय है। जहां हमें सरकारी नौकरी मिली कि झट समाज के रजिस्टर से नाम कटा लिया। मैं ने स्वयं देखा है कि मुन्सिफ़, सबजज, डिपुटी, डाक्टर, इन्जीनियर होने पर पहला काम यही होता है कि समाज के रजिस्टर से अपना नाम कटा लेते हैं। हमारे देश के लाट साहिब गिरजाघर में जाते नहीं शरमाते, मगर सबजज साहिब, यदि समाज के सालाना जलसे में चन्दा देते हैं तो, पहले कह देते हैं कि--भाई, रजिस्टर में हमारा नाम न लिखना। व्याख्यान सुनने आते हैं तो रात को, और छिप कर एक कौने में बैठ जाते हैं ताकि कहीं ऐसा न हो कि पुलीस का आदमी जेनरल डायरी में नाम नोट कर ले।

ख़ैर, यह तो आजीविका का प्रश्न है; परन्तु, जिन बातों में हम निर्भय हो सकते हैं उनमें भी तो नहीं होते। बिरादरी

हमारे लिये 'हौआ, है। हमारे यहां बच्चोंका मुंडन संस्कार गंगा-स्नान पर ही होता है, इसलिए वहीं होगा, घर नहीं। हमारे घर विवाह पं० अयोध्याप्रसाद जी पौराणिक विवाह-पद्धति से कराते हैं, वे ही करायेंगे। यदि ऐसा न करेंगे तो बिरादरीवाले सम्मिलित नहीं होंगे। यह बिरादरी वाले कौन हैं-लाला सेठ मल, जिनके घर शराब बग़ैर मुंह में ग्रास तक नहीं जाता। दो २ वेश्याएं जिनके घर हैं। सैकड़ों बकरे काटकर देवी के बहाने अपने उदर में रख लिए हैं। धर्म्म के दश लक्षणों में से एक नहीं। भला ऐसी बिरादरी से डरना ही क्या? एक तरफ़ हक़ीक़तराय की मिसाल हमारी आंखों के सामने है और दूसरी ओर हमें इतना भय! आर्य पुरुषो, यदि स्वामी दयानन्द के जीवन से आप कोई शिक्षा गृहण करना चाहते हैं तो पहिली शिक्षा निर्भयता है।

स्वामी दयानन्द के जीवन से दूसरी शिक्षा हमें

समय के सदुपयोग

की मिलती है। हमें साप्ताहिक अधिवेशनों में जाने को समय नहीं मिलता, संध्या करने को समय नहीं मिलता, स्वाध्याय को समय नहीं मिलता। परन्तु, स्वामी दयानन्द के जीवन की ओर दृष्टि डालिये, कितनी थोड़ी अवस्था में कितनी पुस्तकें लिख डालीं, कितने व्याख्यान दे डाले, फिर शास्त्रार्थ और पत्र-व्यवहार करना पृथक् रहा।

हमें घन्टों गप उड़ाते व्यतीत हो जाते हैं। किसी को कचहरी से फ़ुरसत नहीं तो किसी को दूकान से। किसी ने सच कहा है कि—"काम करने वाले मनुष्य को कभी समय की कमी की शिकायत नहीं होसकती, आलसियों को ही हमेशा यह शिकायत रहती है कि हमें फ़ुरसत नहीं मिलती।"

स्वामी जी महाराज के जीवन से तीसरी शिक्षा

पारस्परिक प्रेम

है। हम कदापि इस नीति के पक्षपाती नहीं कि ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाय। साथ ही हम इसके भी अनुयायी नहीं कि कोई हमें जो चाहे सो कहता रहे और हम उसका उत्तर न दें। परन्तु इसमें पारस्परिक प्रेम का होना अत्यावश्यक है। प्रेम वह आकर्षण शक्ति है जो पशुओं को भी अपनी ओर खींच लेती है, फिर मनुष्य तो विचारशील है। प्रेम के द्वारा शत्रु भी अपना मित्र हो सकता है। आप किसी को सदैव कटु वाक्य कहते रहें और फिर यह आशा रक्खें कि वह आपकी बातें सुन कर उनको स्वीकार करेगा; यह सर्वथा असम्भव है। स्वामीजी के जीवन के सब पृष्ठ पलट जाइये, परन्तु कहीं पर आपको यह न मिलेगा कि उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों से कटुवाक्य कहे हों। क्या बिना दूसरे धर्म वालों के दिल दुखाये हुए हम अपने धर्म का प्रचार कर ही नहीं सकते? हमारी यह कदापि सम्मति नहीं कि खण्डन किया ही न जाय। नहीं, खण्डन अवश्य किया जाय परन्तु वह उन शब्दों में हो जो किसी को बुरे न लगें। यदि हम प्रेमपूर्वक किसी के सिद्धान्त का खण्डन करें और फिर भी वह रुष्ट हो तो इसमें हमारा दोष नहीं। हम नाम देना नहीं चाहते, हमने कई उपदेशकों को मुसलमानी धर्म्म पर कटु शब्दों में कटाक्ष करते देखा व सुना है। हमारे धर्म पर यदि कोई अन्य धर्मावलम्बी कटाक्ष करे तो क्या हमें क्रोध न आयगा? बस "आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः" यही हमारा सिद्धान्त होना चाहिये।

---:o:---

एक सच्ची घटना।

(लेखक—प्रो० पं० देवेन्द्र शास्त्री, सांख्यतीर्थ।)

"अनिश्चितार्थादिविरमन्तिधीराः।"

जब शरत्काल की बर्फ़ीली तीक्ष्ण हवा भी ऋषि दयानन्द के सुदृढ़ आसन को न हिला सकी, महीनों पर्वत और जंगलों में घूमते २ कांटों से पैर नागफन के समान हो गये, सारा शरीर कांटों से छिल गया, नुकीले पत्थरों के कारण पैरों में जगह २ घाव हो गए, इतने पर भी ऋषि का अपने लक्ष्य से ध्यान न हटा, तब अन्तिम परीक्षा का समय आया। जिस परीक्षा में कोरी कल्पना का काम नहीं, जहां केवल वाक्चातुरी की आवश्यकता नहीं, जहां अपने सर्वस्व को समर्पण करने की आवश्यकता है, जिस परीक्षा में ध्रुव जैसे ही ध्रुव रह सके, जिस परीक्षा की कठिनता को विचार कर दृढ़ से दृढ़ हृदय भी कांप उठता है, वह परीक्षा अभी शेष है। आज देवता ऋषि की उसी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं।

विशाल पर्वत-माला के नीचे एक नदी भयङ्कर वेग से

बह रही है, प्रातःकाल का पहाड़ों का सुर्रैरा वायु सन्नाटे के साथ चल रहा है, नदी के कूल, वर्फ़ के नुकीले टुकड़ों से कट कट कर गिर रहे हैं, पहाड़ी पत्थरों से टकरा टकरा कर हिम मिश्रित जल भयानक शब्द कर रहा है, ऐसे प्रभात में मनुष्य तो क्या किसी पशु पक्षी का भी शब्द दूर दूर तक सुनाई नहीं देता। सूर्य भगवान् के निकलने में अभी घन्टे भर की देर है, ऐसे ही समय में एक विशालकाय मनुष्य उस नदी के तट पर आ खड़ा हुआ। तेजोमयी दृष्टि से उसके योगी होने का सहज ही भान होता था। क्या इस नदी के पार जाने का कोई स्थल मार्ग है—इसी चिन्ता ने इसके धीर गम्भीर मुखमंडल को कुछ क्षणों के लिये चिन्तित कर दिया। एक ओर ऊंची पर्वत चोटी, दूसरी तरफ़ कण्टकाकीर्ण घना जंगल! तीसरी ओर महा वेगवती नदी, फिर किस प्रकार वह अपने मनोरथ में कृतकार्य हो; उसीसे वह चिन्तित था। इसकी स्फूर्तिविशेष से यह प्रतीत होता था कि वह अपने महान् लक्ष्य साधन में देर करना नहीं चाहता। निस्सन्देह किसी अनिर्वचनीय आन्तरिक पीड़ा ने उसको विह्वल कर रक्खा था। अधिक समय की प्रतीक्षा न कर उसने बिना किसी शङ्का के उस भयावनी नदी में अपने वस्त्ररहित शरीर को मृत्पिण्ड की भांति फेंक दिया। धीरे धीरे उसका तेजोमय शरीर नदी की तीव्र धारा में बह चला। वर्फ़ के टुकड़े उसकी काञ्चनवर्ण की देह से लग २ कर टूटने लगे। नदी के शीत जल ने अपना प्रभाव जमाना आरम्भ किया। उसके फटे शरीर को तीखे बर्फ़-पिण्डों ने जगह जगह से छिन्नभिन्न कर दिया। शीत की अधिकता के कारण रक्त नाड़ियां निश्शक्त हो गईं। धीरे २ शरीर से गर्मी की मात्रा का लोप होने लगा। सुन्न हुआ शरीर निश्चेष्ट होने लगा। अभी किनारा दूर है, यह देख कर योगी का धैर्य हाथ से जाता रहा। बीसवीं शताब्दी के चमकते सूर्य का अस्त समय दूर नहीं था। शरीर अनित्य है- मरणशील है--वह सदा रहने वाला नहीं- इस दृढ़ निश्चय के कारण वह तपस्वी मृत्यु से नहीं घबराया। तो क्या उसे संसार से सदा के लिये अपना आसन उठा लेना चाहिये? नहीं, कभी नहीं। जिस लक्ष्य के साधन में अपने सांसारिक सुख को लात मारी, अपने प्रिय बन्धुवर्ग को सदा के लिये जलाञ्जलि दी, जिसकी खोज में पर्वत और जंगलों का कोना २ देख डाला, उसके पूर्ण किए बिना मरना पाप है, महा पाप है। जिसका मैंने बीड़ा उठाया, संसार के उद्धार का दृढ़ निश्चय कर सब कुछ उसी के समर्पण कर दिया, भूतभावन भगवान् ही को अपना सर्वस्व समझ दुर्गम वन और पहाड़ों पर वर्षों विचरता रहा, जिसकी कृपा से संसाररूपी महासागर सहज में ही पार किया जा सकता है, क्या वह क्षुद्रातिक्षुद्र नदी से मुझे पार न करेगा? अवश्य करेगा। इस विचार के साथ ही न मालूम कहां से उस ब्रह्मचारी के शरीर में फिर से क्रिया आ गई। अतुल साहस और धैर्य शरीर में भर गया। एक क्षण में वह निश्चेष्ट शरीर किनारे पर आ लगा। "धन्य दयानन्द धन्य, परीक्षा हो चुकी,, ये शब्द न मालूम उसने कहां से सुने! कदाचित् अपने ही शब्द हों, मालूम नहीं। परन्तु परीक्षा की उत्तीर्णता में सन्देह नहीं रहा। ईश्वर-विश्वास, दृढ़निश्चय, अमित धैर्य और अतुल साहस का इससे अच्छा दृष्टान्त कहां मिलेगा? ऋषि के जीवन की यह एक सच्ची घटना है, जिसका पढ़ना सहज पर उस पर चलना कठिन है।

——::०::——

महर्षि के चरित्र से शिक्षा।

[लेखक-श्रीयुत रामस्वरूप जी शास्त्री, काव्यतीर्थ।]

—०:०:०—

महात्मा भर्तृहरि कहते हैं, कि मन, वाणी और शरीर में पुण्यरूपी अमृत से भरे हुए, तीनों भुवनों को अपने उपकारों से प्रसन्न कर दूसरों के छोटे गुणों को भी पर्वत के बराबर समझने वाले सन्त पुरुष कितने हैं। परमार्थ को जानने वाले पण्डितों का अपमान न करो क्योंकि तिनके के बराबर लक्ष्मी उनको कर्त्तव्य-पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकती। कमल की डंडी का सूत श्याम गण्डस्थल वाले हाथी को नहीं रोक सकता।

वाचकवृन्द, यही शिक्षाएं हमें महर्षि के जीवन से प्राप्त होती हैं। संसार में किसी बात को बढ़ा कर वितण्डावाद करने वाले सैकड़ों पुरुष हैं, परन्तु धर्मोपदेशों पर चल जन्म सुधारने वाले बहुत थोड़े। यही कारण है कि वाक्शूरों के उपदेश दूसरों के हृदयों पर अधिकार नहीं कर सकते। मन, वचन और शरीर से समानाचरण करने वाले विरले ही होते हैं। हमको महर्षि के जीवन से प्रथम यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। दूसरी शिक्षा जो हमें महर्षि के जीवन से प्राप्त होती वह "संसार का उपकार करना" है जैसा कि आर्यसमाज के छठे नियम में श्री स्वामी जी ने लिखा है—

" संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।'

तीसरी सबसे बड़ी शिक्षा, जो हमें स्वामीजी के जीवन से मिलती है, वह 'लोभ में आकर कर्त्तव्यपथ से भ्रष्ट न होना' है । महाराणा उदयपुर ने स्वामी जी को अपने मन्दिर की गद्दी पर प्रतिष्ठित करना चाहा था और उसके लिये कई लक्ष रुपये की जागीर भी देने का वचन दिया था, परन्तु शर्त यह थी कि स्वामी जी मूर्ति-पूजा का खण्डन करना छोड़ दें। स्वामीजी ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में महाराणा को उत्तर दिया —'ऐसा कभी नहीं हो सकता ।' पाठकगण, देखा, लक्ष्मी का लोभ महर्षि को कर्त्तव्यपथ से तनिक भी विचलित न कर सका । एक हम लोग हैं जो तुच्छ प्रलोभनों के कारण ही तुरंत अपने उद्देश को त्याग देते हैं। महर्षि के जीवन से यह भले प्रकार प्रकट होता है कि कर्त्तव्यपालन का क्या फल है और उससे मनुष्य कितनी सफलता प्राप्त कर सकता है । यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती लोभ में फंसकर कर्त्तव्यभ्रष्ट हो जाते तो आज संसार में उनका मान कदापि न हुआ होता । यह जागृति, जो इस समय दृष्टिगोचर होरही है, कभी देखने में न आती । यह महर्षि के अपूर्व और अनुकरणीय गुणों का निदर्शन मात्र है। यदि उनके प्रत्येक गुण की विवेचना की जाय तो एक बड़ा भारी पोथा तैयार हो सकता है । वास्तव में महर्षि का शरीर विविध गुणों का केन्द्र था। हमको ऋषि के गुणों से शिक्षा ग्रहण करते हुये उनके प्रदर्शित पथ पर चल कर लाभ उठाना चाहिये । महात्माओं के अपूर्व गुणों से मनुष्य अपूर्व शान्ति लाभ करता है। उनके उपदेशों ही से सांसारिक लोग ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्त कर कल्याण के भागी बनते हैं।

——:o:——

—यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानी लोग, लाखों करोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये ।

—भगवान मनु।

निष्काम कर्म ।

[ले०-श्रीयुत राजेन्द्रकृष्णकुमार, बी० ए०, हैडमास्टर, डी० ए०-वी० स्कूल, आगरा ।]

——:o:——

जिस समय धर्म के जिज्ञासु के मन पर उच्च जीवन की आवश्यकता का गहरा चिन्ह हो जाता है उस समय उसे अच्छे बुरे की स्वयम् ही पहचान हो जाती है । कोई कार्य उससे ऐसा नहीं हो सकता जो उसके दुःख का हेतु हो। जितना ही वह उच्च जीवन में प्रवृत्त होता जाता है उतना ही आनन्दप्राप्त करता है। धीरे धीरे धार्मिक जीवन को ही सुख का मार्ग अनुभव करने लगता है। इसीमें उसकी इच्छा दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और उसके हृदय से यह शब्द निकलते हैं—"एवं त्वयि नान्यथे तो अस्ति न कर्म लिप्यते नरे।"

शनैः शनैः शुभ कार्य उनके स्वाभाविक गुण हो जाते हैं। उसके लिये किसी प्रकार की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु इस पदवी को प्राप्त करने के लिये अपरिमित समय की आवश्यकता होती है। मनुष्य के सब शुभ काम पहले पहल सकाम कर्म्म होते हैं । अर्थात् वह जो कुछ करता है किसी इच्छा विशेष से ही करता है । ये इच्छायें दो प्रकार की होती हैं—एक निकृष्ट दूसरी उत्कृष्ट। जिस समय केवल किसी सांसारिक इच्छा से मनुष्य कोई शुभ काम करता है उस समय वह धर्म की निकृष्ट अवस्था में होता है; परन्तु जब अच्छे कार्यों में उसकी प्रवृति बढ़ती जाती है तो धर्म की उत्तम अवस्था को प्राप्त होकर सत्य पुरुष बनता जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करके मनुष्य के भीतर परोपकार की इच्छा बढ़ जाती है और वह दूसरों की भलाई में अपनी भलाई समझता है।

जब जिज्ञासु इस पदवी पर पहुंच जाता है कि उसके सब शुभ कार्य उत्तम इच्छा से ही होते हों तो उस समय उसके उच्च जीवन में एक और परिवर्तन होता है। उसकी उत्तम इच्छाओं का निर्दिष्ट सीमा से आगे बढ़ना कठिन हो जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि शनैः शनैः वह इच्छाओं को छोड़ने लगता है और एक समय ऐसा आ जाता है कि वह कोई शुभ कार्य किसी उद्देश विशेष से नहीं करता किन्तु वह उसका स्वाभाविक गुण सा हो जाता है। शुभ कर्म

वह सकाम भाव से नहीं करता, किंतु इसलिये कि, वह उनके करने से पृथक् नहीं रह सकता। निष्काम कर्म करते २ जहां किसी प्रकार के अहंकार या फल की इच्छा पैदा होती है, तुरन्त उसकी आत्मा से आवाज़ आती है—"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृतः, तास्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जना।" आत्मिक शक्ति का पूर्ण विकास होने पर हम निष्काम कर्मों के शिखर पर पहुंच जाते हैं और निष्काम अवस्था में आत्मा के शुद्ध स्वरूप को अनुभव करने के योग्य होते हैं।

ऋषि दयानन्द ने जो कुछ किया वह सब निष्काम कर्म था। अतः उनका आदर्श हमारे सामने होना चाहिये।

——::०::——

महर्षि का आदर्श।

(लेखक—राय साहब पं० जयराम शर्मा, जगरांवी)

सीने को तेरे मतलए अनवार कहूंगा।
मैं दिल को तेरे गुञ्च-ए-बेख़ार कहूंगा॥
तेरी दया को अब्रे गोहर-बार कहूंगा।
भगवन्! तुझे आनन्द का भंडार कहूंगा।
शीरीं ज़बां को मैं तेरी तलवार कहूंगा।
चलती को तेरी उसकी मगर धार कहूंगा॥

(२)

ऋषियों में तुझको सरवरो सरदार कहूंगा।
तहसीनो आफ़रीं का सज़ावार कहूंगा।
मज़हब को तेरे क़ातए अदबार कहूंगा।
शिक्षा को तेरे दाफ़ए आज़ार कहूंगा॥
मक़सद को तेरे देश का उद्धार कहूंगा।
हेतू को उसके वेद का परचार कहूंगा॥

(३)

वाणी को तेरे सीने का इज़हार कहूंगा।
भाषण को तेरे सत्य का सिंगार कहूंगा॥
जीवन को तेरे धर्म का उद्धार कहूंगा।
व्यवहार को तेरे मैं सदाचार कहूंगा॥
मैं तुझको रहनुमाओं की सरकार कहूंगा।
"आरजसमाज" को तेरा दरबार कहूंगा॥

——:०:——

भारतोद्धारक दयानन्द।

[लेखक-श्रीयुत राजकुमार रणवीर सिंह वर्मा।]

गऊ अपने झुण्ड से बिछुड़ गई। शाखा का मार्ग भूल कर एक सघन निर्जन वन में जा पहुंची। 'वां वां' चिल्लाती हुई इधर से उधर दौड़ने लगी। एक सिंह दो दिन का भूखा था। गऊ की ध्वनि सुनते ही वह झट अपने स्थान से बाहर निकल आया। आनन्दमग्न होकर, भोजनप्राप्ति की लालसा में, हर्षपूर्वक एक महादारुण गर्जन किया। दिशाएं प्रतिध्वनित हो गईं। नीरव वन कम्पायमान हो उठा। गऊ चौकन्नी होकर ठिठक गई। सिंह, झाड़ी को चीर के उस के सामने आ पहुंचा। निर्बल गऊ ने उस का भीषण आकार देख कर हृदयद्रावक स्वर से आर्त्तनाद किया। सिंह फिर उच्च कण्ठ से दहाड़ा। गऊ निश्चल भाव से खड़ी रही। सिंह रोम फुला तथा पुच्छ उठा के ज्योतिर्मय भयंकर नेत्र चमकाता हुआ गऊ की ओर बढ़ा। गऊ ने फिर एक बार 'वां, शब्द किया।

सिंह गऊ के निकट जा पहुंचा और निर्दयतापूर्वक पुनः गर्जने लगा। गऊ भीरुभाव से चुपचाप खड़ी सिंह पर टकटकी लगाए रही। इसी समय बन्दूक का धड़ाका हुआ। सिंह जहां का तहां ठंडा हो के गिर पड़ा। एक वृक्ष से बन्दूक लिए हुए एक नवयुवक उतरा। गऊ उसे देखते ही 'वांवां, करती हुई निकट जा कर उस का हाथ चाटने लगी। बन्दूक पृथ्वी पर रख के उस ने गऊ को अत्यन्त प्रेमपूर्वक पुचकार के सन्तुष्ट किया। बन्दूक उठाली तथा "आओ माता,, कहके एक ओर चला। गऊ उसके पीछे पीछे सहर्ष चलने लगी। पाठकों को विदित हो कि जिस राजा की गोशाला की यह गऊ है उन्हीं का यह राजपुत्र है। इसी के अन्वेषण में वह अकेला यहां आया था।

राजकुमार के साथ गऊ चल पड़ी। वृक्षों ने मानो प्रसन्न होकर उन पर अपने पुष्प बरसाए। शीतल सुवासित पवन ने विशेष आह्लादित किया। एक वृक्ष पर, एक सारिका ने बैठे बैठे, अत्यन्त मधुर स्वर से, मनोहारिणी वाणी में कहा—

गो सदृश 'भारतभूमि' 'शाठ्य-मृगेन्द्र' से पीड़ित रही।
बिछुड़ी सुवैदिक पन्थ से तो गैल 'अघवन' की गही॥
'श्रीमद्दयानन्दर्षि' ने उस को बचाया आन कर।
सुर-भूमि, मातृमही तथा शुचि-रत्नगर्भा जान कर॥

——:०:——

ऋषि दयानन्द की वेदप्रियता।

(लेखक–श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी, बी० ए०, ऐल-ऐल० बी०।)

ऋषि दयानन्द या वैदिक धर्म के सम्बन्ध में जो भी आक्षेप हों उनके उत्तर देने के लिये आर्यसमाज को प्रत्येक समय तय्यार रहना चाहिये। जिन पश्चिमीय महानुभावों या हमारे देश निवासियों ने दयानन्द के चरित लिखे हैं या उनके कार्य की आलोचना की है, उनमें से अधिकांश ऋषि की सराहना करते हुए कहते हैं कि—"स्वा० दयानन्द वेदों को ईश्वरीय ज्ञान या निभ्रान्त न मानते थे। उन्होंने हिन्दुओं को प्रसन्न कर उनमें प्रसिद्धि पाने की लालसा से ऐसा विश्वास प्रकट कर दिया है।" हमारी समझ में लोगों का यह कथन सर्वथा असत्य है। ऋषि के सम्बन्ध में यह कहना– कि, उन्होंने अपने जीवन में मन, वचन कर्म या किसी अन्य प्रकार से असत्य का उपयोग किया—निर्मूल, निराधार और महा झूठ है। जिन्होंने ऋषि के विषय में ऐसा लिखने का साहस किया है वे निम्नलिखित हैं:—

(१) फ्रैंक लेलिंगस्टन, ऐम० ए०, (लन्दन) ने अपनी पुस्तक "The Brahmosamaj and Aryasamaj in their bearing upon christianity = A study in Indian Theism. (२) मि० जे० ऐन० फरगुहार, ऐम० ए० Modern religious movement in India" नामक पुस्तक में। (३) पं० सीतानाथ तत्वभूषण ने १९१६ के "माडर्न रिव्यू" में। (४) ला० लाजपतिराय लिखित 'The Aryasamaj' पुस्तक पर वलायत में जो समालोचनाएं हुई हैं उनमें भी ऐसे ही विचार प्रकट किये गये हैं।

इतने ही नाम पर्याप्त होंगे। अब देखना यह है कि क्या यह आक्षेप क्षण भर के लिये भी सत्य माना जा सकता है?

(१) ऋषि ने स्वरचित 'सत्यार्थप्रकाश, में अनेक स्थानों पर लिखा है कि वेदों के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रमाण माननीय नहीं। यही बात उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्य में भी स्पष्ट लिखी है। (२) जहां अन्य मतों के प्रचारक अपने ग्रन्थों में केवल पारलौकिक उन्नति के साधन बतलाते हैं वहां दयानन्द अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकादि पुस्तकों में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नतियों का मूल वेद को बताते हैं। (३) वे कहते हैं कि रेल, तार, जहाज़ आदि सबका सूत्र रूप से वेदों में उपदेश किया है। (४) समस्त वर्ण आश्रमों को वेदों से पूर्ण शिक्षा मिलती है। (५) ऋषि ने अपने स्वीकारपत्र में सबसे अधिक बल 'वेद-प्रचार पर दिया है। (६) ऋषिने सबसे उत्तम शिक्षाप्रणाली 'गुरुकुल' प्रणाली को माना है और उसमें वेदों की शिक्षा को प्रधानता दी है। जो त्यागमूर्ति महात्मा इस बीसवीं शताब्दी में 'त्याग' का आदर्श उपस्थित कर गया उसको 'हरदिलअज़ीज़' बता कर आत्मा के विरुद्ध उपदेश देने वाला कहना भयङ्कर भूल है। (७) जिस ऋषि ने राजा महाराजों का भय न कर निर्भयतापूर्वक सत्य का प्रचार किया, क्या वह मृतप्रायः हिन्दू जाति के डर से अपने मन्तव्य को अन्यथा प्रकट कर सकता था?

क्या उपरोक्त हेतुओं के होते हुए कोई मनुष्य यह कह सकता है कि ऋषि को वेदों पर विश्वास न था। जिन लोगों का विचार है कि वेदों के समान "पूर्णपुस्तक" कोई हो ही नहीं सकती उनको वेदों का महत्व जानने के लिये कम से कम मि० एल्फ्रेड वालेस और मि० फ़िलिप्स की पुस्तक "टीचिंग आव् दी वेदाज़" का अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये।

ब्रह्मसमाजियों की तो लीला ही विचित्र है। १८५० ई० में वेदों को मानने न मानने पर इन लोगों में शङ्का उत्पन्न हुई। चार पण्डित बनारस भेजे गये। उन्होंने आकर यह कह दिया कि वेदों में अनेक त्रुटियां हैं। बस, इसी पर सब ने वेदों को अमान्य ठहरा दिया। भला इस अन्धविश्वास का कहीं ठिकाना है! इसी ब्रह्मसमाज के नेता पं० सीतानाथ तत्वभूषण यह लिखते हैं कि दयानन्द को वेदों से प्रेम न था! खूब!

यदि हमारे आर्य भ्राता वेदों का पढ़ना पढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझने लगें तो फिर किसी को ऐसी निर्मूल शङ्काओं के करने का साहस ही न हो।

——::०::——

—वे लोग सर्व श्रेष्ठ हैं जो औरों के सुख को अपना सुख तथा औरों के दुःख में अपना दुःख समझ अपने जीवन को संसार के हितार्थ समर्पित कर देते हैं।

—ला० लाजपतिराय।

हमारा भविष्य ।

(ले०-श्रीयुत नन्दलालसिंह जी, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, उपमन्त्री, सभा ।)

प्रिय पाठक, आर्यसमाज का भविष्य क्या होगा? इसको जानने के लिये आवश्यक है कि हम आर्य समाज की वर्त्तमान अवस्था पर दृष्टि डालते हुए विचार करें कि समाज की गति इस समय किस ओर है? आज आर्य्य समाज को स्थापित हुए बत्तीस वर्ष हो गये; इस थोड़े से समय में उसने जो उन्नति की वह किसी से छिपी नहीं है। आर्यसमाज के जन्म लेने से अब तक आर्य्यपुरुषों की संख्या में उत्तरोत्तर कितनी वृद्धि हुई इस को ठीक ठीक जानने के लिये पाठकों को १८९१, १९०१ और १९११ ई० की मनुष्य-गणना-सम्बन्धी सरकारी रिपोर्टें (Census reports) पढ़नी चाहिये। उनसे ज्ञात होगा कि १८९१ की अपेक्षा १९०१ ई० में आर्यों की संख्या द्विगुण हो गई थी, और फिर १९०१ की रिपोर्ट की अपेक्षा १९११ की में भी वे दूने हो गये। आर्यसमाज की इस उन्नति को सन्तोष-जनक उन्नति समझना चाहिये। यदि इस गति में अन्तर न आया तो दो शताब्दी पश्चात् २१०१ ई० में भारतवर्ष में वैदिक धर्मावलम्बियों की संख्या ३० करोड़ ७२ लाख से भी अधिक हो जायगी।

परन्तु हमको देखना यह है कि जो पुरुष आर्यसमाज की शरण आते हैं उनके जीवन में क्या परिवर्त्तन होता है? यदि किसी के जीवन में कोई शुभ परिवर्त्तन नहीं हुआ तो समाज में आने से क्या लाभ? केवल नाम लिखा लेने से कोई फ़ायदा नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्यों की संख्या बढ़ाने से समाज दूषित होता है, दूसरों के लिये बुरी मिसाल सामने रखता है। आर्यसमाज का बाह्य चमत्कार सबके सम्मुख है और प्रत्येक मनुष्य जानता है कि समाज ने अब तक क्या किया या कर रहा है। परन्तु शोक है कि समाज की आन्तरिक दशा सन्तोषजनक नहीं है। आज हम आर्यसमाज में केवल इसलिये आये हैं कि वह चैतन्य और जीती-जागती संस्था है। लेकिन हम में से ऐसे कितने हैं जो विधिपूर्वक हवन, स्वाध्याय, वेद-पाठ तथा यमनियमों का पालन करते हैं। यह समाज का तिमिरावृत भाग है जो अति भयङ्कर और हानिकारक है। यदि इस पर समाज के विचारशील नेताओं ने शीघ्र ही ध्यान न दिया, तो भय है, कि कहीं भविष्य में आर्यसमाज अपने आदर्श से—जिसकी पूर्ति के लिये ऋषि दयानन्द ने उसे स्थापित किया था—विमुख न हो जावे।

प्रिय पाठकगण, आज भगवान दयानन्द के स्मरण का दिन है। आइये, भारतवर्ष में ऋषि गुण-गान करें। पारस्परिक प्रेम का पूर्ण परिचय दें। ऋषि को स्मरण करने का सर्वोत्तम प्रकार यह है कि हम आज यह व्रत धारण करें कि भविष्य में ऋषि की कल्याणकारिणी शिक्षा को स्वचरित्र में ढालते हुये अपने जीवन को "आदर्श जीवन" बनायेंगे।

——:o:——

गुरुकुलशिक्षा-प्रणाली ।

(ले०-श्रीयुत प्रोफ़ेसर पीतमलाल जी गुप्त, ऐम०ऐस-सी०।)

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में अन्य अनेक लाभों के अतिरिक्त एक विशेष बात—जिससे गुरुकुल-शिक्षा, आधुनिक विश्वविद्यालयों की शिक्षा की अपेक्षा अत्यंत आवश्यक है—है शिक्षा का माध्यम। गुरुकुलों में शिक्षा ब्रह्मचारी की मातृ-भाषा द्वारा दी जाती है और विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषा द्वारा। विदेशी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का फल यह होता है कि विद्यार्थी किसी विषय के वास्तविक भाव को नहीं समझता। उसका ज्ञान केवल वाह्य ही रहता है। विद्या मन में स्थान न पाकर केवल पुस्तकों में ही रह जाती है और इस से उत्पन्न होने वाले सद्गुण विद्यार्थी में उत्पन्न नहीं होते। यही कारण है कि विद्या-भूषित पुरुषों का आचार व्यवहार भी अनपढ़ लोगों का सा दीख पड़ता है। वास्तव में आजकल की विद्या का, जीवन को धार्मिक और पवित्र बनाने मे, कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी कारण आजकल के शिक्षित पुरुष भी देश, जाति तथा मनुष्यमात्र के लिये लाभदायक होते नहीं दीख पड़ते।

आजकल के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को पाश्चात्य सभ्यता के सिखाने में पूरा प्रयत्न किया जाता है।

परन्तु क्या इस सभ्यता से भारत अथवा मनुष्यजाति का कल्याण हो सकता है? यह प्रश्न है जिसका उत्तर बड़े बड़े विद्वान "नहीं" में देना ही सत्य समझते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों के ब्रह्मचर्य पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। वे विद्यार्थि-अवस्था में ही गृहस्थाश्रम भोगते हैं। इसी कारण उनकी मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो पाता। गृहस्थाश्रम की आवश्यकताओं से, पाश्चात्य सभ्यतानुसार रहन-सहन से, आय न होने से मनुष्य निराशावादी, पुरुषार्थ-हीन हो जाता है और जीवन का उद्देश पूरा करने के लिये असमर्थ होता है। इसके विरुद्ध गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती है कि विद्यार्थि-आश्रम में विवाह कदापि न किया जावे। जीवन को साधारण बनाया जावे। आवश्यकताओं को कम करना परम सुखकारी है। इस उपदेश का फल यह होता है कि विद्यार्थी की शक्तियों के विकसित होने को अवकाश मिलता है और वह पुरुषार्थी, आशावान् और कर्मवीर बनता है।

पाठकगण, आपने देखा कि गुरुकुल-शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य मात्र को बराबर समझना है और प्रत्येक मनुष्य जीवन को मनुष्य जाति की उन्नति के लिये समझना है। इसमें ब्रह्मचर्य और साधारण जीवन का उपदेश धार्मिकशिक्षा और मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना यह विशेष गुण हैं। यहां पर आप प्रश्न करेंगे कि क्या कारण है कि गुरुकुल प्रणाली सब प्रकार से हितकर होती हुई भी योग्य पुरुष पैदा नहीं करसकी जैसी कि आशा थी।

पाठक! अन्य संस्थाओं की तरह, गुरुकुल के भी दो अंग हैं। एक उद्देश, दूसरा, वास्तविक दशा। यदि यह मान भी लिया जावे कि गुरुकुल से, यथा-वाञ्छित मनुष्य पैदा नहीं हुए, तो इस से गुरुकुल प्रणाली में कोई दोष नहीं आता, किन्तु उसकी वास्तविक दशा में। यदि हम गुरुकुल संस्था की वर्तमान दशा के दोष ढूढें—उन दोषों के कारणों को, सब मिल कर, दूर करने का प्रयत्न करें, तो हमको पूरी आशा करनी चाहिये कि गुरुकुल, योग्य पुरुष अवश्य पैदा करेंगे। इसके विरुद्ध यदि गुरुकुल के दोष (यदि हों) वैसेही छोड़ दिये गये तो, चाहे उद्देश कितना ही उच्च और पवित्र हो, उससे योग्य मनुष्य पैदा न हो सकेंगे।

———:॥०॥:———

ऋषि-पञ्चक।

[१]

अतुलित अन्धेर घटाने को,
अनुचित अभिमान मिटाने को,
हिंसा, हठवाद हटाने को,
शुभ सत्य प्रथा प्रकटाने को,
ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

[२]

संसार-सिन्धु से तरने को,
प्यारे "स्वदेश" पै मरने को,
उपकार लोक का करने को,
दुखियों के सङ्कट हरने को,
ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

[३]

उन्नति की ज्योति जगाने को,
आनन्द-सुधा बरसाने को,
ऊंचा आदर्श बनाने को,
कहने को, कर दिखलाने को,
ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

[४]

वर बेल मेल की बोने को,
नित वैर, विरोध बिगोने को,
निज देश-दशा पर रोने को,
पर, नेक निराश न होने को,
ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

[५]

परमेश्वर के गुण गाने को,
वैदिक उपदेश सुनाने को,
विष-पूरित प्याला पीने को,
मर कर भी जग में जीने को,
ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

"अबोध"

———:०:———

ऋषि दयानन्द और संस्कृत भाषा।

(लेखक—श्रीयुत अमरनाथ जी, प्राइवेट सैक्रेटरी, महाराज शाहपुरा।)

—०:०:०—

इसमें सन्देह नहीं कि ऋषि दयानन्द ने जो प्रचार किया, जो ग्रन्थ रचना की तथा अन्य जो फलीभूत कार्य किये वे सब, प्रायः, हिंदी में ही थे। ऋषि दयानन्द अपने प्रचार के आरम्भ के दिनों में, यद्यपि संस्कृत का आश्रयण करते रहे तथापि, अज्ञों को तथा विदेशी भाषाभिज्ञों को सन्मार्ग पर लाने के लिये उन्हें शीघ्र ही संस्कृत में प्रचार त्यागना पड़ा। उनके रचित ग्रंथों में से 'वेद भाष्य' और 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' को छोड़ कर सभी हिंदी में हैं। इस प्रकार, यद्यपि स्थूल रीति से संस्कृत भाषा या संस्कृत विद्या की वृद्धि में ऋषि दयानन्द का हाथ प्रतीत नहीं होता तथापि, वर्तमान भारतवर्ष में संस्कृत विद्या के प्रति लोगों का जो अनुराग है, उसमें बड़ा कारण ऋषि दयानन्द ही प्रतीत होता है। ऋषि की कारणता मोटे विभागों में संक्षिप्त रीति से यों वर्णन की जा सकती है:—

(१) ऋषि दयानन्द के उपदेश, शिक्षाएं, वेद और तदनुकूल शास्त्रों पर अवलम्बित हैं। यह स्पष्ट है कि उनके शिष्य वेदादि शास्त्रों का ज्ञान उपलब्ध करें। और वे 'सत्यार्थप्रकाश' और 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में बतलाये वैदिक सिद्धान्तों के बल से ही कब तक काम कर सकते थे, क्योंकि विरोधियों का प्रतिरोध करने के लिये स्वयं संस्कृत का जानना तथा उनके दिये हुए प्रमाणों की जांच करना आवश्यक था। इस प्रकार से आर्य्यसामाजिक लोगों के अन्दर संस्कृत का प्रचार हुआ और वह कई विधियों से हुआ।

(क) संस्कृतज्ञ उपदेशक तय्यार करने से। (ख) कुछ छोटी २ संस्कृत पाठशालाएं खोलने से। (ग) दयानन्द एङ्लो-वैदिक कालिज की स्थापना भी संस्कृत के उद्धार को ही दृष्टि में रख कर हुई थी और अब तक भी वहां के विद्यार्थियों में से बहुत सों में संस्कृत के लिये बड़ा उत्साह पाया जाता है। इस कालिजने अन्य जो काम किये वे किसी विद्वान् से छिपे नहीं। (घ) बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शिक्षा की एक नई विधि भारत के कई स्थानों में काम में लाई गई और वह शिक्षाविधि गुरुकुलशिक्षा-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। यह शिक्षा-विधि भी आर्य्यसामाजिक सज्जनों के पुरुषार्थ से फलीभूत हो रही है। इस शिक्षा-प्रणाली में तो संस्कृत को ही प्रधानता मिली हुई है। संस्कृत को न जानने की इच्छा वाला विद्यार्थी गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त ही नहीं कर सकता।

(२) आर्य्यसमाजियों के अतिरिक्त शिक्षित हिंदुओं में भी, बहुत सों में संस्कृत के लिये प्रेममय उत्साह पाया जाता है। एक समय था जब भारतवर्ष के शिक्षितोंमें यह विचार ज़ोर मार रहा था कि संस्कृत छोड़ो। पुराने ख़याल, पुरानी भाषा, पुरानी सभ्यता को नाश कर दो। नये प्रकाश, नई सभ्यता को ग्रहण करो। आज स्वदेशानुरागी, स्वदेशी सभ्यता के सहसा परित्याग को भारी भूल बतलाते हैं। ये लोग—इनमें से बहुत से—संस्कृत के अध्ययन को भी बहुत उपयोगी समझते हैं। इन में से अनेकों के अन्दर संस्कृत से प्रेम का कारण, ऋषि दयानन्द का, केवल संस्कृत जानने पर भी उन्नत, विचारशील, अद्वितीय तार्किक होना है। अब लोग जान गये हैं कि संस्कृत के अन्दर कोई दोष नहीं, यह पढ़ने वाले का दोष है जो रत्नों को नहीं देख सकता। एक ऋषि दयानन्द था जो संस्कृत का ही आश्रय लेकर संसार में दिग्विजय करता रहा, इत्यादि।

(३) आर्यसमाज के विरोधियों में भी ऋषि दयानन्द द्वारा संस्कृत का कम प्रचार नहीं हुआ। ऋषि दयानन्द द्वारा वेद शास्त्रों के नये आशय बतलाये जाने पर पौराणिक जगत् में खलबली मचनी स्वाभाविक थी। पौराणिकों के अन्दर अपने धर्मरक्षणार्थ संस्कृत का अध्ययन पहले से वृद्धि कर रहा है। जहां पहले संस्कृत को कुछ एक विद्वान् ही पढ़ते थे, वहां अब अनेक लोग संस्कृत के अध्ययन से लाभ उठा रहे हैं। जहां पहले सनातनधर्मावलम्बी दर्शन और व्याकरणादि पर ही आयु का बड़ा भाग व्यय करते थे, वहां अब वे धर्म-पुस्तक स्मृतियों और वेदों का भी हाथ ही हाथ अध्ययन करते हैं ताकि वे अपने विरोधियों के साथ शास्त्रार्थ आदि में उत्तर दे सकें। इस प्रकार इन इन विधियों से ऋषि दयानन्द भारतवर्ष में संस्कृत के प्रचार में कारण बने।

——::०::——

—जो जाति आंशिक सत्य को प्रधानता देती है, जो यथार्थ सत्य का अनुसरण करने से मुंह नहीं मोड़ती, उसने संसार में अनेक कार्य किये हैं और वह विशेष रूप से धन्य हुई है।

—सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

वेदोद्धारकर्त्ता दयानन्द।

(ले०-आर्यवीर श्री ठा० गदाधर सिंह जी।)

परमात्मा अमृत हैं और हम सब अमृत सन्तान। वह निर्बन्ध और अनादि हैं और हम सब को भी नियमित स्वतन्त्रता प्रदान की हुई है। इस सुविशाल संसार—सुविस्तृतप्राङ्गण—में स्वेच्छानुसार विचरण की न केवल स्वतन्त्रता वरन् सम्पूर्ण शक्ति भी प्रभु ने दी हुई है।

दृष्टि पसार कर देखें, जो कुछ दृश्यमान है, जो कुछ ज्ञातव्य है, जितना कुछ प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष—जो कुछ सम्भूत है—हमारी शक्ति से बाहर कुछ भी नहीं। तड़ित-विद्युत अपनी प्रभा और छटासे संसार को आलोकित, चकित करती है। सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्रादि अपने अपने आकर्षण, धारण, प्रकाशन आदि गुणों से ज्वलन्त चमत्कार दिखा रहे हैं। वायु और अग्नि, समुद्र और पर्वत, अपने अपने सामर्थ्य और शक्ति की, ऊंचे चढ़कर, घोषणा कर रहे हैं।

देखें तो, ज़रा ग़ौर से देखें क्या ये सभी, ये सम्पूर्ण, हमारे ही भृत्य और परिचारक नहीं हैं? सचमुच अमृतमय परमात्मा हमारे परमपिता ने हम को इन सभों पर पूर्ण आधिपत्य प्रदान किया हुआ है।

पात्र के अनुरूप ही पदार्थ की स्थिति होती है, अतः उस नियन्ता ने हमको, हमारे मस्तिष्क को और हमारी शक्ति को इस योग्य बनाया है कि हम सृष्टि के उपरोक्त सम्पूर्ण विभव का प्रयोग और उपयोग, धारण और संचालन, स्वेच्छया कर सकें और स्वतन्त्रता इतनी कि चाहे हम अपनी विशाल शक्तियों को संकुचित छोड़कर नितान्त जड़वत् हो जायं, और चाहें तो आकाश, पाताल, पर्वत, समुद्र, वायु और अनल, सभी को एक ही सूत्र में बांध कर नर्तन करावें।

शक्ति रहते भी साधन के बिना, सिद्धि नहीं होती। तो क्या सम्भव था कि ऐसी महत्शक्ति और स्वतन्त्रता प्रदान करके हमारे परमपिता संसारसिद्धि-सुख के साधन हमको न देते? अवश्यमेव वह साधन हम को मिला।

सारे संसार की—न केवल सारे संसार—सारी सृष्टि की, वरन् सिरजनहार तक की भी कुंजी वेद है।

'भूतं भव्यं भविष्यञ्च, सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति'। मनु०।

अतः दया-भंडार पिता ने हमें अपनी इस सुविस्तृत फुलवाड़ी में भेज कर न केवल उस सम्पूर्ण को आधिपत्य ही प्रदान किया वरन् उस का सम्पूर्ण ज्ञान, उस को सम्यग् प्रकार से उपयोग में लाने की विद्या और सुख-प्राप्ति के सभी साधन भी साथही साथ दिये हैं। पर हम स्वतन्त्र हैं। हमारी दौड़ के मैदान में कोई रुकावट भी नहीं, तभी तो हम या तो कभी कभी आलसी बन बैठ रहते और कभी बेतहाशा दौड़ कर टकरा जाते हैं। नहीं तो सच्चिदानन्द पिता की सन्तान—अमृतपुत्र—हम लोग सदा काल ही चिदानन्दमय क्यों न रह पाते?

बस, समय समय पर जब जब हमारी दशा अपने ही प्रमादवश विपरीत होती है, तभी वह हमें यथार्थ मार्गप्रदर्शन के लिये हमारे मध्य महात्मा जनों का प्रादुर्भाव कर के हमारे सुधार और सुख, मंगल और मोक्ष का मार्ग सुगम कर देते हैं। ऐसे ही महात्माओं के वचन, अमृतमय शुभसम्वाद, समय समय पर हमको सुनाई पड़ते रहते हैं।

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत। उपनि०।
सर्वे भवन्ति सुखिनः सर्वे सन्ति निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति माकश्चित् दुःखभाक् जनाः॥ बुद्ध।
वेदो नित्यमधीयताम् तदुदितं, कर्मण्यनुष्ठीयताम्। शंकर०

सम्प्रति संसार में बड़े बड़े विप्लव और परिवर्त्तन होने के कारण मानवी स्वतन्त्रता में आपाधापी और स्वार्थपरता की बीमारी घुस पड़ने से सुन्दर, अनश्वर, सत्य शास्त्रों की पर्यालोचना और प्रवचन बंद सा होगया था। सो परमात्मा की कल्याणी वाणी, प्रचार और निर्वाण प्राप्ति का मार्ग सुगम और स्वच्छ करने के लिये महात्माओं को बड़े बड़े कठिन परिश्रम करने पड़े। वेदों के व्याख्यान स्वार्थियों की कपोल कल्पनाओं से सर्वसाधारण के लिये अप्राप्य, अगम्य हो गये। अतः महात्मा बुद्धदेव को, परमात्मा की कल्याणमयी वाणी को, प्राकृतभाषा में प्रचारित और प्रघोषित करना पड़ा। परन्तु उनके उपदेशों की नींव सुदृढ़ न होने के कारण जब जन साधारण की प्रकृति उनके उपदेशों की मर्यादा से भी गिरने लगी तब अगत्या महात्मा शंकराचार्य को फिर से वेदों की घोषणा करनी पड़ी। इस घोषणा ने भी बहुत कुछ किया। परन्तु सर्वसाधारण के लिये फिर भी समस्या कठिन ही बनी रही। क्योंकि वेद-पारंगत होना सबके लिये सुसाध्य नहीं था।

श्रीयुत राजा राममोहन राय आदि उदार और सहृदय सज्जनों ने वेदों के सच्चे अर्थों की खोज में कितना परिश्रम, कष्ट और धन-व्यय सहन किया सो किसी से छिपी हुई बातें नहीं है, तो भी सर्वसाधारण के लिये वैदिक मार्ग साफ़ और सुगम न हो पाया। क्योंकि वेदों के साफ़, सरल, शुद्ध और ऋषिप्रणाली के अनुसार अर्थ सर्वसाधारण की भाषा में प्रस्तुत करने का किसी ने साहस नहीं किया। प्रवचन, भाष्य, उक्ति, प्रयुक्ति, विस्तार, विचार, सम्मति, वक्तव्य आदि आदि सभी कुछ किये गये पर उनके शुद्ध शब्दार्थ और भावार्थ किसी ने नहीं बतलाये। किसी के निज मत को प्रमाणरूपेण मान लेना मनुष्य स्वभाव, सुलभ स्वतन्त्रता के बिलकुल विपरीत है। इसी हेतु निरन्तर मतामत प्रवृत्त और निवृत्त होते रहे। सत्य कहा है—" अनेक जन्म संसिद्धिः ततो यातिपराङ्गतिम् "।

पुण्यभू आर्य्यावर्त्त के उद्धारार्थ महात्माजन जन्मजन्मान्तर यत्न करते रहे। जिस सिद्धि के लिये महात्मा बुद्धदेव ने राजपाट परित्याग कर भिक्षु बनना स्वीकार किया था, जिसके लिये महापुरुष शंकर ने यत्न किये, और राजा राममोहन राय ने मन, प्राणसे उद्योग किये थे सो सचमुच ही वह सिद्धि महर्षि दयानन्द के हाथों पूर्णता को प्राप्त हुई। भजनीक ठीक ही गाया करते हैं—

धर्म की डूबती नैया के तिराने वाले।
वेद-बल्ली से उसे पार लगाने वाले।
गुज़रे आलम में हुये ऋषी महर्षी कितने।
न्याय की, धर्म की मर्याद बताने वाले।
न हुआ आप सा पैदा मगर आलम में कहीं।
वेद के भाष्य को भाषा में बनाने वाले।

ऋषि ने बतलाया—वेद सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं, उन का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सबका परम धर्म है। भ्रातृगण, सुखका साधन, सिद्धि का सुगम उपाय, निर्वाण और मुक्ति का एक मात्र पथ उपरोक्त शब्दों में बतला कर, इह लोक और परलोक, अभ्युदय और निःश्रेयस की कुञ्जी 'वेद, को हमारे हाथों में थमा कर और हमको पूरी स्वतन्त्रता से ऋषिप्रणीत पथ पर चलने का आदेश कर के, आज ही, इसी रात्रि को वह महर्षि सुरलोक, डंके बजाता पधारा है।

आओ, हम लोग ऋषि-वाक्य को सार्थक और सफल करने के लिये अपने तन, मन और आत्मा को संसार के उपकाररूपी यज्ञ में आहुत कर के ऋषि-ऋण से उद्धार होवें।

——:०:——

ऋषि का ऋषित्व।

(ले०— श्रीयुत अध्यापक गंगाप्रसाद जी, ऐम० ए०)

ईश्वरोपासना के लोप से मनुष्य जाति की एकता लुप्त हो जाती है। जिससे निश्रेयस तो क्या अभ्युदय भी नहीं बन सकता। ऋषि दयानन्द ने देखा कि ईश्वर के स्थान में मनुष्योपासना, प्रतीकोपासना, पाषाणोपासना आदि अनेक प्रकार की उपासनायें प्रचलित हैं। ऋषि ने बताया कि मनुष्य नाना हैं, प्रतीकें नाना हैं, प्रतिमायें नाना हैं अतः इनके उपासक भी नाना ही रहेंगे। ईश्वर एक है, अतः उसी की उपासना से उपासकों में वास्तविक एकता आ सकेगी। वेद भगवान् का उपदेश है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥ (यजु ४०।६)

कौन नहीं जानता कि उपास्यों की भिन्नता कितनी कलहों का कारण नहीं हुई। एक मूर्ति के उपासक दूसरी मूर्ति के निन्दक हैं और एक पैग़म्बर के अनुयायी दूसरे के शत्रु। यदि इन सब मूर्तियों और पैग़म्बरों को अलग करके लोग केवल एक ईश्वर के उपासक बनें तो जिस प्रकार एक केन्द्रस्थ वृत्त (Concentric circles) छोटे बड़े होते हुये भी एक दूसरे को नहीं काट सकते, इसी प्रकार एक ईश्वर के उपासक भी एकता को प्राप्त कर सकेंगे।

वर्णाश्रम के लोप होने की हानि को तो पाश्चात्य देश भी भली भांति अनुभव कर रहे हैं। जहां इस देश में अग्निहोत्र न करने वाले अग्निहोत्री, यज्ञ न करने वाले वाजपेयी, अक्षर न जानने वाले उपाध्याय तथा रक्षा न कर सकने वाले क्षत्रिय कहलाये जाने के कारण उस यूनीवर्सिटी का सा हाल हो रहा है जिसमें बिना परीक्षा ही बी० ए०, एम० ए० की पैतृक डिगरियां बटा करती हैं। वहां पाश्चात्य देशों में नितांत नियमाभाव के कारण अन्धेर नगरी है। इसी लिये स्वामी दयानन्द ने कहा है कि जबतक वर्णाश्रम ठीक न करोगे किसी प्रकार की उन्नति न हो सकेगी। उस समय इस बात को किसी ने उपेक्षा और किसीने शत्रुता की दृष्टि से देखा और अल्पदर्शी

लोग अब तक अपनी तान अलापते जाते हैं। परन्तु कार्यक्षेत्र में कूदने वालों को स्वामी दयानन्द का कथन कितना उपयोगी मालूम होता है इसके प्रमाण के लिये सनातनधर्म के महा पण्डित श्रीयुत बाल गंगाधार तिलक के गीता रहस्य का एक ही प्रमाण पर्याप्त होगा—

"पुराने ज़माने में ऋषियों ने श्रम-विभाग रूप चातुर्वर्ण्य संस्था इसलिये चलाई थी कि समाज के सब व्यवहार सरलता से होते जावें किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग पर ही सारा बोझ न पड़ने पावे और समाज का सभी दिशाओं से संरक्षण और पोषण भलीभांति होता रहे। यह बात भिन्न है कि कुछ समय के बाद चारों वर्णों के लोग केवल जाति मात्रोपजीवी हो गये अर्थात् सच्चे स्वकर्म को भूल कर वे केवल नामधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में यह व्यवस्था समाजधारणार्थ ही की गई थी और यदि चारों वर्णों में से कोई भी एक वर्ण अपना धर्म अर्थात् कर्त्तव्य छोड़ दे अथवा यदि कोई वर्ण समूल नष्ट हो जाय और उसकी स्थान पूर्ति दूसरे लोगों से न की जाय तो कुल समाज उतना ही पंगु हो कर धीरे २ नष्ट भी होने लग जाता है अथवा वह निकृष्ट अवस्था में तो अवश्य ही पहुंच जाता है।" (पृ० ६५)

उपरोक्त शब्द ऋषि के ही उपदेश की प्रतिध्वनि हैं। आज कल बहुत से उन्नति के उत्सुक उपर्युक्त सुधारों की उपेक्षा करके इनके विना ही शारीरिक, सामाजिक, व्यापारिक तथा नैतिक उन्नति के शिखिर पर कूद कर बैठना चाहते हैं। परन्तु अनुभव बतलायेगा कि उनकी दशा उस माली के समान है जो वृक्ष की जड़ को न सींच कर केवल पत्तों को धोना चाहता है।

——::0::——

शान्तिप्रसारक दयानन्द।

(ले०-श्री०पं०लक्ष्मीधर वाजपेयी, सम्पादक, हिंदीचित्रमयजगत्)

—*:0:*—

कहते हैं कि महापुरुष अपने समय की आवश्यकता को पूर्ण करने आते हैं, यह सच है। पिछली शताब्दी में अनेक महापुरुष भारतवर्ष में हुए। राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा महादेव गोविन्द रानाडे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इत्यादि अनेक महापुरुष इसी शताब्दी में हुए। सबने, अपने २ विचार के अनुकूल भारत को उन्नत करने में योगदान दिया। मि० रमेशचन्द्रदत्त के समान राजनीतिज्ञों ने भारत को उठाने के लिए प्रयत्न किया। लेकिन उन सब में स्वामी दयानन्द एक निराले ही महापुरुष हुए। वह कौन सी बात है कि जो स्वामी दयानन्द को अपनी शताब्दी में सबसे अधिक महत्व देती है? कहना नहीं होगा कि स्वामी दयानन्द 'आर्यत्व' के अद्वितीय अभिमानी थे।

आर्यधर्म्म—वैदिकधर्म्म,—आर्यावर्त देश, आर्यभाषा, आर्यसभ्यता ही उनका आदर्श था। वे स्वयं एक "कट्टर आर्य" थे। "कट्टर आर्य" आजकल का "आर्यसमाजी" नहीं, किन्तु, स्वामी दयानन्द वही आर्य थे, जिनका वेदों में जगह जगह उल्लेख आता है, राम और कृष्ण, गौतम और कणाद, व्यास वशिष्ठ जिस श्रेणी के आर्य थे उसी श्रेणी के गुण कर्मस्वभाव रखनेवाले, वर्तमान युग के आर्य स्वामी दयानन्द थे। आर्य का लक्षण क्या है? जो जिस बात को जैसा देखता सुनता है वैसा ही उसको मानता, वैसा ही प्रकट करता और वैसा ही कार्य करता है—जो सत्यमानी, सत्य वादी और सत्यकारी है—वही आर्य है। सत्य के प्रकट करने में जो अपने प्राण जाने का भी भय नहीं करता, सत्य के सामने जो त्रैलोक्य की सम्पदा को तुच्छ समझता है, दुनिया से मिथ्याचार और पाखण्ड को उठा देने के लिए जो नाना प्रकार के लोकापवाद और कष्ट सहन करता है, और अन्त में अपने इसी उद्देश में प्राण भी दे देता है, वही आर्य है।

इस ज़माने में स्वामी दयानन्द की क्या आवश्यकता थी? हमने कितने ही लोगों को कहते सुना है कि स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज खोलकर उतना उपकार नहीं किया जितनी फूट फैला दी। हम कहेंगे कि इन महाशयों ने स्वामी दयानन्द की आवश्यकता ही को नहीं समझा। हम पूछते हैं, भारत के अथवा संसार के भिन्न भिन्न धर्मों और मतों में फूट कब नहीं थी? सत्य तो यह है कि स्वामी दयानन्द के समान 'एकता' का प्रचारक इस ज़माने में हुआ ही नहीं; और वह एकता, जो आर्य सभ्यता के आधार पर ठहरी हुई है। सबसे पहले स्वामी जी ने एक ईश्वर की भक्ति बतलाई है, अन्य कल्पित देवी-देवताओं, भूतप्रेतों की पूजा और भक्ति का उन्होंने निषेध किया है। यह क्यों? इसीलिए कि सब

मनुष्य एक परमपिता की ओर अपना पूरा लक्ष्य लगाकर अनुपम एकता अनुभव करें। हम पूछते हैं, मुसल्मानों में इतनी एकता क्यों है, और हिन्दुओं में इतनी फूट क्यों? हमारी अल्प मति के अनुसार हिन्दुओं में फूट होने के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि वे सब एक ही सर्वशक्तिमान् निराकार परमात्मा के पूजक नहीं हैं—भिन्न २ देवताओं की पूजा के अभिमान में भिन्न २ सम्प्रदाय खड़े कर रक्खे हैं, जिनके कारण राष्ट्र में संकीर्णता, धर्मान्धता, स्वार्थ, पाखण्ड और धूर्तता के दुर्गुण भर गये हैं। इन सब मतपन्थों को हटा कर एक वैदिकधर्म और एकेश्वर–उपासना की ओर सब को लाने का यदि स्वामी दयानन्द ने प्रयत्न किया तो हमारे भाई कहते हैं कि स्वामी दयानन्द ने फूट फैलाई। फूट स्वामी ने नहीं फैलाई, लोगों के मिथ्या धर्माभिमान और तज्जन्य स्वार्थ ने फैलाई। और आज की नहीं किन्तु यह फूट शताब्दियों से चली आ रही है; अब तो कुछ कम भी हो रही है।

आदर्श दयानन्द।

(१)

"न होगा भारत का उत्थान," निभाऊंगा मैं अपनी टेक,
"लिखे मस्तक पर विधिके अंक, मिटायेगा क्या बालक एक?"
बनाओ स्वयं तुम्हीं निज अंक, करो मत निष्क्रियता का पाप,
निहारो मुख औरों का नहीं, राष्ट्र उठते हैं अपने आप।
रखो विश्वास, बढ़ाओ पैर, बेड़ियां कायरता की तोड़,
उघारो नेत्र, लखो निज ओर, जगत में हम हैं तीस करोड़॥

(२)

"न तोड़ो बन्धन" करो न पाप,' अछूतोन्नति हित करो उपाय,
"इसीमें है हमको आनन्द," किन्तु है औरों पर अन्याय।
"यहां है चम्पा सहित सुगन्ध," वहां है पूरा भरा गुलाब,
"हमारे हैं सब उत्तम कार्य," वहां भी हैं उत्तमतर भाव।
स्वयं निज हाथों से क्यों हाय! बनाया अपना कारागार?
मिटाओ यह सब कृत्रिम भेद, बहाओ स्वच्छ त्रिवेणी धार॥

(३)

"बनो मन्दिर के पूज्य महन्त, देव-सेवा का लो शुभ काम,"
यहां हैं तीस कोटि वर देव, विशद भारत है पूजा-धाम।
"करूंगा भेंट अतुल धन-राशि" न धन से बुझे सत्य की प्यास,
"बनूंगा स्वयं तुम्हारा दास," लिया है सेवा हित सन्यास।
तुम्हारी दया और सम्मान, तुम्हारे राज सहित यह प्रान,
करूं मैं सुखद देश हित लगे पैर के कंटक पर बलिदान॥

'शर्म्मा'

ब्रह्मचर्य्य–महिमा।

[लेखक–श्रीयुत प्रोफ़ेसर घनश्याम शर्मा शास्त्री।]

पाठकवृन्द, ब्रह्म परमात्मा का नाम है तथा उसके ज्ञान-पुस्तक वेद का नाम भी ब्रह्म है। उस ज्ञान की प्राप्ति के लिये और न केवल ज्ञान प्राप्ति ही के लिये अपितु उस ज्ञान के अनुसार क्रियाओं की शिक्षा प्राप्ति के लिये जो व्रत धारण किया जाता है, उसको ब्रह्मचर्य कहते हैं। किसी भी वैदिकधर्मावलम्बी से छिपा नहीं कि वैदिकधर्म चार वर्ण और आश्रमों के आधार पर अवलम्बित है। बिना ब्रह्मचर्य के कोई भी वर्ण ठीक दशा में नहीं रह सकता। जिस प्रकार चारों वर्णों का मूल ब्रह्मचर्य है, उसी प्रकार, आश्रमों का भी। बिना ब्रह्मचर्य–पालन के ईश्वरीयज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति हो नहीं सकती।

मनुष्य-जीवन के धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार मुख्य पदार्थों या पुरुषार्थ–चतुष्टय की प्राप्ति भी ब्रह्मचर्य के बिना नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य-पालन से मनुष्य में विलक्षण शक्ति उत्पन्न होती है, जिसके प्रभाव से उसको कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होता।

कायिक, वाचिक और मानसिक सच्ची और पूर्ण उन्नति यदि किसी ने की है तो केवल ब्रह्मचर्य के बल पर ही। प्रत्यक्ष में देखिये कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जो कुछ विद्या और धर्म्म के प्रचार द्वारा संसार का उपकार किया है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन से ही। इसी उच्च आदर्श को लक्ष्य में रख कर आर्यसमाज के हितैषियों ने गुरुकुल आदि संस्था स्थापित की हैं। जिनसे बहुत कुछ हितसाधन होने की सम्भावना है। परन्तु इस सम्बन्ध में मेरी अल्पमति में जो कुछ त्रुटि प्रतीत हुई है, उसको भी आर्यजनता के समक्ष निवेदन करना ज़रूरी समझता हूं। आशा है अधिकारिवर्ग विचार करेगा। मेरी सम्मति में जबतक गुरुकुलों में अध्यापक अथवा आचार्य ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य, तपोबलसम्पन्न, सन्यासी अथवा वानप्रस्थ न होंगे तबतक यह मनोरथ सिद्ध होना कठिन है। क्योंकि जिस प्रकार माता-पिता के गुण, कर्म और आकृतिका प्रभाव सन्तान पर पड़ता है उसी प्रकार

गुरु के गुण कर्म और शिक्षाओं का भी प्रभाव शिष्यों पर अवश्य पड़ता है। और यदि माता-पिता भी ज्ञानविज्ञान, वैराग्य सम्पन्न हों तथा गुरु भी उक्त गुण सम्पन्न वानप्रस्थ अथवा संन्यासी हों तब तो और भी अच्छा। सोना और सुगन्ध दोनों गुणों का कहना ही क्या। इसलिये माता-पिता का परम कर्तव्य है कि गर्भाधानादि संस्कारों से पूर्व ही परमेश्वर से प्रार्थना करें और इस भाव को हृदय में स्थिर रखें कि जो वैदिक-धर्म के द्वारा संसार के उपकारक हों, ऐसी सन्तान हम को देवें।

——:o:——

श्रीमद्दयानन्द दीक्षासप्तकम्।

[लेखक-श्रीयुत ब्र० द्विजेन्द्र जी, गुरुकुल, वृन्दावन।]

[१]

छन्दोव्याकरणं निरुक्तमपिवा तर्कादि सारस्वतं
निश्शेषं स समाप्य तीव्रधिषणः प्रस्थातुकामस्ततः।
सानन्दं व्रतिवृन्द वन्दित दयानन्दस्स्व वन्द्यं गुरुं
गत्वा प्राञ्जलि रुक्तवान् प्रियगुरो! सन्देशमादिश्यताम्॥

[२]

श्रीमद्वन्द्य पदारविन्दकृपया ज्ञानामृतं पन्मया
स्वल्पेनैव परिश्रमेण भगवन्नानन्ददं विन्दितम्।
अन्यत्किं तदुपायने वितरितुं शक्तोऽस्मि कोपीनवान्
तच्छ्रीमन्ननुगृह्यतां करुणया ग्राह्या लवङ्गाञ्जलिः॥

[३]

श्रुत्वानम्र वचो मुदा पुलकितो मीमांसमानोयतिः
पूर्वं हर्षित मानसः समभवन्पश्चाच्च शोकान्वितः।
किं कर्वाणि लवङ्गकै व्रतिवर! प्रौढोऽसि मद्वर्णिषु
तच्चेद्वाञ्च्छसि नः श्रमं फलयितुं तर्हीदमङ्गीकरु॥

[४]

वेदाभेदमुपागताः स्मृतिरपि प्रायः स्मृतौ राजते—
विप्रा विप्रियकारिणः समभवन् व्यामोह मुष्टि धयाः।
राजानो मृगयादि मार्गणपराः कान्तर कान्ता जुषः
शेषाणां किमुवर्णना निपतितो मूले कुतः पल्लवाः॥

[५]

हा हा भारतवर्ष मद्य निखिलोत्कर्षादिभिर्वर्जितं
किञ्चेदश्नुति पञ्चतामहरहोऽस्मत्पश्यतां मञ्जसा।
इत्यद्गौक्तिगतं गुरुं विस्मयन् साध्यन्नतस्माद्दशां
सच्छास्त्रोद्धरणे तमोऽपहरणे योगीश एव प्रभुः॥

[६]

आज्ञाचेदियमेव ते प्रियगुरो! भाले वहत्युत्तमां
किन्त्वाशीस्सुवचोभिरेष कुमतिः सम्भावनीयः सदा।
नप्राणार्पणतोऽप्ययं विचलितो भूयान्निजोद्देशतो
पावच्छक्ति च पालयिष्यति मुदा तच्छ्रीमतां सेवकः॥

[७]

ओमित्युक्तवतो गुरोः सुमनसा स्पृष्ट्वा सपादाम्बुज—
माज्ञापालनतत्परो गुणिगणश्रेष्ठस्ततः प्रस्थितः।
कस्याज्ञातमिहास्ति योगिमणिना यद्यत्कृतं भारते
भास्वान् भानुरपेक्षते भुवि निजास्तित्वेऽपि किंसाक्षिताम्

——::o::——

ईश्वर-महिमा।

(लेखक श्रीयुत शिवशङ्कर 'सूफ़ी, मजिस्ट्रेट)

ब्रह्म समझ पृथिवी मत पूजो जड़ चेतन में अन्तर है।
पूजो ब्रह्म एक रस पावन जो व्यापक परमेश्वर है॥
जिससे मनन मनुज करता है उसको सब मन कहते हैं।
जो सुख के अनुभव का कारण जिससे दुख को सहते हैं॥
मन का संचालक जो कोई उसको ब्रह्म अनादि कहो।
ब्रह्म मान मन को मत पूजो जगदीश्वर की शरण गहो॥
अहंभावका अभिमानी जो चेतन जीव कहाता है।
इन्द्री के विषयों का ज्ञाता जो मन, बुद्धि चलाता है॥
कर्म शुभाशुभ का जो कर्त्ता उसका द्रष्टा ज्ञाता है।
सर्व-शक्ति-सम्पन्न महेश्वर कर्मों का फलदाता है॥
सत्यप्रकाश किया है जग में, अद्भुत ज्योति दिखाई है।
सत्यसुधानिधि वैदिक वानी, मुनि ने हमें सुनाई है॥
जीव ब्रह्म को समझ न पूजो जीवब्रह्म नहिं होता है।
चितधर पूरण ब्रह्म एक रस, "सूफ़ी" तू क्यों सोता है॥

——::o::——

परोपकारी दयानन्द

(लेखिका—श्रीमती विद्यावती, विशारदा)

प्राचीन की शक्ति की प्रबल धारा ने स्वामी दयानन्द को महान् पुरुष बना दिया। यदि स्वामी जी सत्यासत्य की जांच न करके लोकाचार और लोकरूढ़ि का ध्यान करते और उसीके अनुसार मानसिक ढांचा ढालते तो आज उनका नाम तथा काम अमरत्व को क्यों प्राप्त होता? यदि स्वामी दयानन्द में आत्मिक बल न होता तो वह अपने सच्चे लक्ष्य या उद्देश "परोपकारय सतां विभूतयः,,को न प्राप्त होते।

आज उन का भी नाम जनसाधारण की तरह हो जाता। यह स्वामी में ही शक्ति थी कि धर्म की मन्दावस्था मनुष्यों की वैदिक धर्म से अनभिज्ञता, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को मुसलमान होते देख कर उनका दयावान् मन स्थिर न रह सका और उन्होंने न चाहा कि अन्य लोगों की भांति भेड़िये धसान के प्रवाह में बहता चला जाऊं। बार २ देखा सोचा विचारा एक दिन नहीं, कितने ही दिवस तक सोचता रहा अन्त को उस की सत्यग्राही आत्मा और मनुष्यों को पहिचानने वाली आंखों ने दिव्य दृष्टि और बारीक निगाह से यही निश्चय किया कि दयानन्द! तू औरों की तरह अचेत मत पड़ा रह, रोग को जान कर उस की चिकित्सा न करना पाप है। तुम्हें परमेश्वर ने आंखें दीं, सत्य धर्म का ज्ञान दिया, उठ खड़ा हो और सोते हुओं को जगा कर उनकी हिम्मत बांध। जो औरों की सहायता करता है ईश्वर उसकी सहायता करता है।

स्वामी ने भारत को अविद्या से भरपूर देख कर अपने जीवन को इसकी उन्नति में लगा दिया, हिन्दुस्तान से उसे आर्यावर्त बना दिया और उसे उन्नति का सच्चा मार्ग दिखला दिया। यह आत्मिक शक्ति ही थी। यदि चाहते हो तो ऋषि सन्तान! उठो, और आत्मिक बल को बढ़ाओ। स्वार्थ के भाव को त्यागकर ऋषि के सच्चे लक्ष्य "परोपकाराय सतां विभूतयः,,को सन्मुख रखते हुये कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो। परमात्मा हमारी सहायता करेगा और हम अवश्य ही सफलता को प्राप्त होंगे, और वह दिन शीघ्र आयेगा जब कि वैदिक धर्म की ध्वजा भारत में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी लहराती हुई दृष्टि आवेगी।

——:०:——

निवेदन।

आर्यमित्र का ऋष्यङ्क आज पाठकों की भेंट किया जाता है। खेद है कि स्थानाभाव से हम कई लेखों को इस अङ्क सम्मिलित न कर सके और कई लेखों को उचित स्थान पर न छाप सके आशा है कि उनके लेखक महाशय हमें क्षमा करेंगे। बचे हुए लेखों को साप्ताहिक अङ्कों में प्रकाशित करने का यत्न किया जायगा। जिन विद्वानों ने हमारी प्रार्थना पर अपने अमूल्य लेख भेजने की कृपा की है उनके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। विनीत—सम्पादक।

——::०::——

आर्यमित्र की ग्राहक-संख्या।

पाठकों की सेवा में आर्यमित्र का ऋष्यङ्क उपस्थित किया जाता है। 'मित्र,' समाज की जो सेवा कर रहा है वह किसी से छिपी नहीं। यथासम्भव वह अपने कर्तव्यपालन में त्रुटि नहीं करता। पाठक महाशयों का भी कर्त्तव्य है कि वे भी उसको अपने हृदय में स्थान दें, उसके ग्राहक बढ़ावें—उत्तरोत्तर प्रचार करें। यदि प्रत्येक ग्राहक इस ओर ध्यान दे तो 'मित्र, की ग्राहक-संख्या शीघ्र ही बढ़ सकती है। हमें आशा है कि इस अङ्क को देख कर 'मित्र, के बहुत से नवीन ग्राहक बढ़ जावेंगे।

दैनिक या अर्द्ध साप्ताहिक?

'आर्यमित्र' को अर्द्ध साप्ताहिक या दैनिक कर देने के लिये अनेक सम्मतियां प्राप्त हो चुकी हैं। जिन महाशयों ने इस सम्बन्ध में अभी अपने विचार प्रकट नहीं किये, आशा है, वे अब शीघ्र ही अपनी सम्मति से हमें सूचित करेंगे, जिस से 'मित्र' को दैनिक या अर्द्ध साप्ताहिक करने पर विचार किया जासके। आर्यसमाज में एक भी दैनिक या अर्द्ध साप्ताहिक पत्र का न होना खेद की बात है। क्या पाठकगण आर्यमित्र को इस त्रुटि की पूर्ति करने के लिये उत्साहित करेंगे?

मैनेजर।

डी० ए०-वी० स्कूल।

हर्ष की बात है कि १० नवम्बर १९१७ को श्रीयुत मि० मौस, ऐम० ए० इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स ने आगरे के श्रीमद्दयानन्द स्कूल का निरीक्षण कर उसे नियमानुसार स्वीकृत (Recognise) करने की आज्ञा दे दी। इस स्कूल ने थोड़े से समय में अच्छी सफलता प्राप्तकी है। उदार हृदय सज्जनों को इस संस्था की सहायता कर अपने शिक्षा प्रेम का परिचय देना चाहिये।

ऋष्यङ्क का उपहार !!!

अनुराग-रत्न

लेखक—

कविराज पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा।

वैदिक भाव-सम्पन्न आर्य्य-भाषा का

अपूर्व पद्यात्मक ग्रन्थ।

स्वा० नित्यानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, महात्मा मुन्शीराम जी, महात्मा नारायणप्रसाद जी, ला० लाजपतिराय जी, पं० घासीरामजी, ऐम०ए०, म० मदनमोहन सेठ, एम०ए०, पं० श्रीधर पाठक, साहित्याचार्य पं० शालग्राम शास्त्री, वेद-तीर्थ पं० नरदेव शास्त्री, मा० आत्माराम जी, प्रो० रामदास गौड़, ऐम० ए० इत्यादि ६५ विद्वानों तथा समाचार-पत्रों ने इस ग्रन्थरत्न की प्रशंसा की है। सब सम्मतियों को छापने से एक बड़ी किताब बन सकती है। जो लोग आर्य भाषा की सरस, भावपूर्ण, हृदय-ग्राहिणी, मनोहर और विशुद्ध कविता पढ़ना चाहते हैं उन्हें यह ग्रन्थ ज़रूर ख़रीदना चाहिये। मू० १) परन्तु आर्यमित्र के ग्राहकों को १५ दिसम्बर तक ॥) में मिलेगा।

डाक व्यय ख़रीदार को देना होगा।

मैनेजर, आर्यभास्कर प्रेस, आगरा।

———::०::———

पढ़िये ! पढ़िये !! अवश्य पढ़िये !!!

गुरुकुलोत्सव की खुशी में ३० दिसम्बर तक मूल्य घटा दया।

उपनिषत्तत्त्व

इस पुस्तक में सम्पूर्ण उपनिषदों के मुख्य ९ विषयों की विशद व्याख्या की गई है। साथ ही मूल मंत्र भी दे दिये गये हैं। वास्तव में इस पुस्तक को उपनिषदों की कुंजी कहना चाहिये। मू० १), रिआयती ॥)।

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

इस पुस्तक में ईसाई, मूसाई, मुहम्मदी, पारसी, जैन, बौद्ध, ब्राह्म इत्यादि मतों पर चर्चा करते हुए वैदिक-धर्म का ऐतिहासिक निरीक्षण किया गया है। इसके पढ़ने से इस बूढ़े भारत का ऐतिहासिक महत्व नेत्रों के सम्मुख झूलने लगता है। मूल्य ॥), रिआ० ।=)

आर्यमत-मार्तंड नाटक

यह नाटक दो भागों में समाप्त हुआ है। बड़ा मनोरंजक और हास्यरस पूर्ण है। इसमें अवैदिक मतों की बड़ी ख़ूबी से पोल खोली गई है। साथ ही आर्य धर्म का प्रकाश संसार को दिखलाया गया है। पढ़ते ही बनता है। मूल्य दोनों भागों का ॥=), रिआ० ।≡)

कलावती उपन्यास

यह उपन्यास पढ़ने में बहुत ही रोचक तथा साथ ही उपदेशप्रद भी है। इसे स्त्री पुरुष दोनों बड़े आनन्द से पढ़ सकते हैं। अनेक प्रकार के व्यावहारिक उपदेश इससे सहज ही मिलते हैं। ज़रूर देखिये। मूल्य ।-), रिआयती ≡)

यवन-मत-समीक्षा

विषय नामही से प्रकट है। मुहम्मदी मत की पोल बुद्धिपूर्वक खोली गई है और प्रमाण से पूरा २ काम लिया गया है। देखने लायक़ किताब है। मू० ≡), रि० =)

काव्य-प्रदीपिका

क्या आप कविता करने के नियम जानना चाहते हैं? यदि हाँ, तो इस पुस्तक को ज़रूर देखिये। आपको काव्यविज्ञान का पूरा २ बोध हो जायगा। मू० ≡), रिआयती =), अपना सुधार मूल्य ।-)

पंचयज्ञविधि

इसमें आर्य्यों के नित्यकर्मपंचयज्ञविधि की व्याख्या सहित दिया है। पांचों महायज्ञों का वैज्ञानिक स्वरूप प्रकट किया है। मूल्य ≡), रिआयती -)॥

प्रायश्चित्तादर्श

वेद शास्त्रों के प्रमाणों से प्रायश्चित का निर्णय

किया गया है। इस पुस्तक की आजकल बड़ी आवश्यकता है। मूल्य ।), रिआयती =) ।

यथार्थबोधक

वेदोपनिषद् इत्यादि के आधार पर परमात्मा, जीव और आत्मा का वर्णन, आवागमन का सिद्धान्त, सनातनधर्म, तीर्थयात्रा और ब्राह्मणों के गुण दोषों का वर्णन है। सब विषयों का यथार्थ बोध कराने वाला है। मू० =); रिआयती -)॥ ।

नीतिशतक

महाराज भर्तृहरि का नीतिशतक, सरल अर्थ सहित बहुत ही उपदेशप्रद है। मूल्य सिर्फ़ -)॥, रिआ०)॥

लरनशियाला

मादक द्रव्यों का निषेध प्रमाणपूर्वक किया है। धर्म की और भी अनेक बातें बतलाई हैं। मू० ।), रि० =)

नानक की जीवनी

सिक्खों के पूज्य गुरु की यह जीवनी अवश्य एक बार आपको पढ़ जानी चाहिये। मू०)॥, रिआ०)।

जैनमत के उत्पत्ति का लका निर्णय

ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है। मूल्य)॥ रिआयती)।, हिन्दूजाति का ह्रास -), रिआ०)॥

सांख्यदर्शन ।

यह स्वामी दर्शनानन्द का भाष्य अन्य सब भाष्यों से बढ़कर है। स्वामी जी ने प्रत्येक सूत्र के अन्दर पैठकर उसका रहस्य समझाया है। मू० ॥।) रिआ० ॥) ।

सुश्रुत ।

यह आयुर्वेद का बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से सम्पादित किया है। अलभ्य ग्रन्थ है। मू० २)। रिआ० १) ।

रामायण ।

आरण्य और सुन्दरकाण्ड गो० तुलसीकृत। मूल्य =)। रिआ० -) ।

पांच पैर की गौ ।

स्वामी मंगलदेवजी का प्रसिद्ध ट्रैक्ट। धूर्तों की माया का उद्घाटन। मू०)।

स्वामी दर्शनानन्द की अमूल्य उर्दू पुस्तकें।

तत्ववेत्ता ऋषि की कथा ।

षट्दर्शनों का ऐक्य बड़ा विद्वता और मनोरञ्जकता से सिद्ध किया है। मूल्य ≡), रिआ० -)।

भगवद्गीता ।

भाषा में श्लोक दिये हैं और उर्दू में उनके नीचे तरजुमा दिया है। उर्दू जानने वालों के लिये गीता के अध्ययन का बड़ा सुभीता है। मूल्य ।=), रिआयती ≡) आने ।

न्यायदर्शन ।

प्रत्येक मंत्र के नीचे उर्दू में विस्तृतभाष्य दिया गया है। स्वामी जी के भाष्यों की तारीफ़ चारों ओर हो रही है। मू० १) रिआयती ॥।) ।

केनोपनिषद् ।

संस्कृत में मन्त्र और नीचे उर्दू में भाष्य। स्वामी जी ने बड़ी खूबी से मंत्रों के अन्दर की बात निकाल कर समझाई है। मू० ॥=), रिआयती ।=)। स्वामी दर्शनानन्द जी के ट्रैक्ट हिन्दी, उर्दू बांटने योग्य।)॥ रिआयती १) सैकड़ा ।

नोट—समाजों के रोज़ाना रजिस्टर, रसीदबही, चैकबुक, कैशबुक इत्यादि विक्रियार्थ तैयार रहते हैं।

मिलने का पता—

मैनेजर, आर्य्यभास्कर प्रेस, आगरा ।

आवश्यकता ।

ज़िला हरदोई में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ एक योग्य उपदेशक की आवश्यकता है। वेतन, भोजन व मार्गव्यय के अतिरिक्त २०) मासिक दिया जायगा। आवेदनपत्र, प्रशंसापत्रों सहित, २० नवम्बर, १९१७ ई० तक नीचे लिखे पते पर आजाने चाहियें:—

सुरेन्द्रनाथमिश्र, उपमन्त्री, आर्यसमाज, हरदोई।

* मेलेरिया आदि सब ज्वरों की अक्सीर दवा *

महाज्वरांकुश रस

प्यारे मित्रो, यह औषधि अत्यन्त कठिन परिश्रम से तैयार की गई है। इसके सेवन से बात, पित, कफ़ के ज्वर, सन्निपात ज्वर, रोज़ आने वाला बुख़ार, शीत ज्वर, तिजारी, चौथैया आदि दो तीन दिन में ही जाता रहता है। अधिक दिन का जीर्णज्वर, विषमज्वर कुछ दिन के सेवन करने से दूर हो जाता है। एक विचित्र गुण इसमें यह भी है कि चढ़े हुए बुख़ार को उतारती है और उतरे ज्वर को फिर चढ़ने नहीं देती बुख़ार की तमाम तकलीफ़ों को रफ़ा करती है। अधिक क्या? "महाज्वरांकुश रस" सर्व प्रकार के हठीले ज्वरों के लिये रामबाण है। अनेक सेठ-साहूकार, ज़मींदार आदि देशहितषी सज्जन ग़रीबों को मुफ़्त बांटने के लिये हमारे यहां से इसकी सैकड़ों शीशियां मंगाते रहते हैं। जिन पुरुषों को मेलेरिया बुख़ार अधिक दिन आया करता है और उसके छूट जाने के बाद जो कमज़ोरी और मन्दाग्नि (खाई हुई गिज़ा का हज़म न होना) बाक़ी रह जाती है ऐसी हालत में इस दवा का कुछ दिन तक सेवन किया जाय तो बहुत जल्द निहायत दर्जे की भी कमज़ोरी और मन्दाग्नि को रफ़ा कर हाज़मे की ताक़त को पैदा करती है। प्लेग के दिनों में इसका सेवन करने से प्लेग होने का भय नहीं रहता। ख़ूबी इसमें यह है कि दस्त साफ़ होता है, भूख ख़ूब लगती है। धीरे २ शरीर में ख़ून पैदा होता है व शरीर को मज़बूत करती है। क़ीमत १०० ख़ुराक की शीशी की १), महसूल ।) ।

पता—पण्डित श्रीअम्बिकादत्त शर्मा वैद्यरत्न

आयुर्वेदीय औषधालय, अलीगढ़ सिटी।

आर्यमित्र के ग्राहकों से आधा मूल्य।

वीर्यवर्द्धक।

वीर्य को ख़ूब पैदा करता है। पैदा करने के साथ ही साथ गाढ़ा भी करके स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, बिना स्वप्न के वीर्य जाना जन्म भर को बन्द करता है। मूल्य २॥)। आर्यमित्र के ग्राहकों से १।)। वीर्य को अपने वश में करने का अद्भुत यत्न २॥)। आर्यमित्र के ग्राहकों से १।)। चन्द्रकला-एकतरा, तिजारी, चौथैया सर्व ज्वरनाशक शीशी ।=)। दाद का काल ।-)।

पता—के० डी० एस० एस० ए०, आर्य देशहितकारी-भवन, रमजू, पो० सादाबाद, प्रान्त मथुरा।

स्वर्णघटित ब्राह्मीरिष्ट।

यह बुद्धि (मेधा) तथा स्मरणशक्ति बढ़ाने में अद्वितीय है। जिन्हें लिखने-पढ़ने आदि मस्तिष्क-सम्बन्धी काम ज्यादा पड़ते हैं, उनके लिये अमृत है। उन्माद, अपस्मार (मृगी), मूत्रदोष, धातु की तरलता, बालों का भूलना, सिर प[...]ा, पुरुषों के वीर्य्य-दोष, स्त्रियों का रजःदोष इससे [...]र हो कण्ठ सुरीला होता है। मूल्य १) शीशी, बड़ा [...]पत्र मुफ़्त मंगा देखिये।

पता:— वैद्य [...]राम गुप्त,

[...] औषधालय,

[...] (चम्पारन।)

केवल ऋष्यङ्क के प्रेमियों को एक बड़ी भारी रिआयत

श्री पं० आर्यमुनि जी रचित पुस्तकें।

गीताआर्यभाष्य २), बाल्मीकि रामायण ७), मानव आर्यभाष्य ३), आर्यसन्तव्य प्रकाश १॥=), सांख्य आर्यभाष्य १॥-), न्याय २॥), वैशेषिक २॥), वेदान्त ३), मीमांसा ८)।

भिन्न २ हिंदी व संस्कृत की पुस्तकें।

छः दर्शनमूल १), उपदेश मंजरी ॥), वैदिक विवाहादर्श १), स्वर्गप्राप्ति ≋), भविष्यपुराण की परताल ।), योगभोजवृत्ती टीका पं० भीमसेन कृत १॥), योगदर्शन व्यास कृत ।), वैशेषिक प्रशस्तपाद ॥)।

स्त्रीशिक्षा की अति उत्तम पुस्तकें।

वीर माताएं ॥), सच्ची देवियां ।=), सतीवृत्तान्त ॥), भारत की वीर स्त्रियां ॥), मैत्रेयी याज्ञवल्क्य सम्वाद ।-), सच्ची स्त्रियां ॥), घरका दरज़ी ≋), नारी महत्व ।), शुद्ध रामायण १॥), गृहचिकित्सा ।=), पारिवारिकदृश्य ।=), भवनकुमारी ।), सती सुचरित्र १), बालसत्यार्थप्रकाश ।=), टाड राजस्थान १॥), जीवन-चरित्र स्वामी दयानन्द जी, बा० घासीराम कृत १॥), ला० लाजपतराय कृत १।), गुरुरामदास =), पं० लेखराम जी, १), एक विदुषी स्त्री ॥), विद्यावती ।॥), हनुमान का जीवन १), भीष्मपितामह ।=)।

भजन पुस्तकें।

आर्यगायन प्रथम भाग ॥=), तीसरा भाग ।=), आर्यसंगीतपुष्पावली ॥), आर्य भजन शतक ।-), संगीत सूर्यप्रकाश -), गुलज़ार भजन =), श्री संगीतमाला ॥-), संगीत रत्नप्रकाश पांचों भाग पूर्वार्द्ध ।॥-), संगीत रत्नप्रकाश पांचों भाग उत्तरार्द्ध १), सफल-जीवन ।=), सफलता की कुंजी ।=), बाल रामकथा ॥), पतिव्रता दमयन्ती ≋), ब्रह्मयज्ञ ॥)। द्रौपदि सत्यभामा ≋)

हर प्रकार की आर्यसामाजिक पुस्तकें विशेषतया तथा अन्य पुस्तकें रिआयतन से भेजी जाती हैं।

... नार ... दत्त अमीचंद
मालिक आर्य ... पांच ... मोलुहारी दरवाज़ा, लाहौर
... बुकडिपो

सेक्सोलीन।

यह वही गोलियां हैं जिनकी तलाश में बूढ़े और युवा सभी लगे रहते हैं। एक गोली का खाना ग़ज़ब कर देता है। अगर पुनः यौवन का अपूर्व आनन्द लूटना चाहें तो इसे अवश्य मंगाइये। दाम १) नमूना ≋)। सूचीपत्र बिनामूल्य। कलकत्ता मेडीकल हाल, १३१, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

अपूर्व ताक़त की दवा।

बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य्य बिगड़ जाने से शरीर में पूर्ण अवधि वीर्य्य स्थिर न रहने से कोमल शरीर में बालविवाह की चपेट लगने से अधूरे विलासप्रेमी बन कर विहार करने से बदन में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। जैसे धातुक्षीणता प्रमेह स्वप्नदोष पेशाब में तार के समान धातु का गिरना शक्कर रेत मिला मीठा पेशाब जहां करो वहां चींटे लगना मूत्रकृच्छ्र बहुमूत्र पथरी मधुमेह पेशाब गदला चूना सा घुला उतरना ज़मीन में सफेदी जमना धातु बिगड़कर चावल के धोवन सी पतली हो जाना पेशाब में जलन लाल तेल सी उतरना पाखाना होते समय धातु निकल जाना नामर्दी तेजहीन रगों में सुस्ती धातु बिगड़ जाने में सन्तान न होना जवानी में बुढ़ापे की हालत दुबलापन कमज़ोरी शिर घूमना पीड़ा करना कमर रीढ़ और पट्ठों में दर्द होना चलने में आलस्य थकावट आंखों के सामने पीले २ पतंगे से उड़ना चेहरे पर खुश्की व ज़रदी बदन में फुर्ती न रहना असली ताक़त की कमी मालूम होना आदि यह कुल बीमारियां अपूर्व ताक़त की दवा खाने से आराम होती हैं और बिगड़ी धातु को शुद्ध कर जमा देती और बदन में फुर्ती पैदा करती है। क़ीमत फ़ी डिब्बा २।=) दो रुपया छः आना।

पं० लालमणि जी शर्म्मा वैद्य,
डाकख़ाना भौंकक, ज़िला कानपुर।

पढ़िये ! पढ़िये !!

सत्यार्थप्रकाश

के सातवें और आठवें समुल्लासों का विषय वेद, ईश्वर और सृष्टिउत्पत्ति है। डारविन साहब का विकासवाद उक्त तीनों वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। इस विकासवाद से सत्यार्थप्रकाश की रक्षा करने तथा वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि और विकासवाद के खंडन में जो ग्रन्थ बड़ी योग्यता से आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री राज्यरत्न मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी, एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर, बड़ौदा ने आर्यभाषा में रचा है इसका नाम

सृष्टिविज्ञान

है। यदि आप वैदिक सिद्धान्तों को सत्य मानते और अपना धर्म समझते हैं कि उक्त सिद्धान्तों पर जो आक्षेप व शंकाएं होती हैं, उनके उत्तरों का प्रचार किया जावे तो आप इस धर्मग्रन्थ को स्वयं पढ़ औरों को पढ़ावें। आजकल विकासवाद का भारी प्रचार देश में लोगों को नास्तिक बना रहा है। उसके रोकने का साधन सृष्टिविज्ञान आपके पास है, उससे काम लेना आपका परम कर्त्तव्य है। जिन नामी महानुभावों ने सृष्टिविज्ञान को अपने अनुग्रह का किसी रूप में पात्र बनाया वा ग्रन्थकर्त्ता को किसी प्रकार उत्साहित किया, उनमें से कुछ शुभ नाम दिये जाते हैं:—

एच०एच०दी महाराजा साहब गायकवाड़, G. C. S. I, बड़ौदा, एच०एच० राजाधिराज, शाहपुरा, K. C. S. I, दीवानबहादुर सामर्थ साहब, भूतपूर्व राजमंत्री, बड़ौदा। रा० रा० मनुभाई साहब, दीवान, बड़ौदा। रायबहादुर श्यामसुंदर लाल जी, सी. आई. ई., जुडीशल दीवान, अलवर। श्रीयुत खासेराव साहब जाधव, सैटिलमेंट कमिश्नर, बड़ौदा। श्री अलखधारी जी, इन्स्पेक्टर जनरल आव इन्डस्ट्री, गवालियर। श्री पं० घासीराम जी, प्रधान, सार्वदेशिक आ० प्रति० सभा, देहली। श्री मदनमोहन जी सेठ, मंत्री, आ० प्रति० सभा, यू० पी०। श्री महात्मा नारायणप्रसादजी, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल, वृन्दावन। राजोपदेशक श्री महात्मा स्वा० विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती, शिमला। श्री हरविलासजी शारदा, बी.ए., एफ.आर. ए. एस., अजमेर। श्री नन्दनाथ दीक्षित, बी.ए., एम.आर.सी.पी., बड़ौदा। श्री ए० एम० मसानी, एम.ए., बी. एस-सी., विद्याधिकारी, बड़ौदा। रायसा० डा० श्याम स्वरूपजी, एल. एम. एस., ...ली। डा० कल्याणदास जे. देशाई, बी. ए., एल. एम. एस, बम्बई। विद्यावाचस्पति, वेदालंकार पं० इन्द्र ... सम्पादक, सद्धर्मप्रचारक। श्री पं० हरिशंकरजी शर्मा, सम्पादक, आर्यमित्र, आगरा। म० कृष्णजी, बी. ए., ...पादक, प्रकाश, लाहौर। श्री खुशहालचन्द्रजी, सम्पादक, आर्य गज़ट, लाहौर। श्री पं० रामजी लाल शर्मा, सम्पादक, विद्यार्थी, प्रयाग। श्री पं० छुट्टनलालजी स्वामी, सम्पादक, वेदप्रकाश, मेरठ। श्री रघुवीरशरणजी दुबलिस, सम्पादक, भास्कर, मेरठ। श्री द्वारिका प्रसादजी सेवक, सम्पादक नवजीवन, प्रयाग। श्री पं० परधुभाईजी, सम्पादक, आर्यप्रकाश, बंबई। कविवर पं० पद्मसिंह जी, संपादक, भारतोदय, ज्वालापुर। इनके अतिरिक्त अनेक भारी विद्वान् इसको

"हिन्दी साहित्य का अपूर्व रत्न"

लिख चुके हैं। युरोप के सायंसदानों के उत्तम सिद्धान्त किस प्रकार वेदमंत्रों में मिलते हैं तथा ऋषि मुनियों के विद्यापूर्ण विचार किस प्रकार अपूर्व हैं, यह सब बातें

युक्ति और प्रमाणों

द्वारा श्री मास्टर आत्माराम जी ने जिस अनुसन्धान की रीति से सिद्ध की हैं वह वही जानते हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ को पढ़ा है। अतीव उपयोगी पुरातत्व-सम्बन्धी ...न चित्र भी इसमें हैं। इसकी छपाई और काग़ज़ दोनों ही सोने में सुगन्ध रूप बन रहे हैं। लगभग ३०० पृष्ठों का पुस्तक, मूल्य २)।

मिलने का पता—

जयदेव ब्रादर्स, कारेलीबाग़, बड़ौदा।

Title Printed by R. ... Co., Agra.

Registered N: A. 25

अनेक पदक प्राप्त और प्रतिष्ठित पुरुषों द्वारा प्रशंसित

बुलाक़ीदास एण्ड सन्स,

लोहामण्डी, आगरा का बनाया।

असली भोजन-सुधार

(दाल आदि का स्वादिष्ट मसाला)

दाल, शाक, भाजी का मसाला बनाने वाले सबसे पहले बुलाक़ीदास ऐन्ड सन्स हैं। इस कम्पनी ने इस मसाले को बनाकर बड़ा नाम पैदा किया है। कितने ही लोगों ने हमारे इस 'भोजन-सुधार' मसाले की नक़ल भी की है। असल और नक़ल में कितना फ़र्क होता है इस बात की जांच करने के लिये पहले हमारा असली 'मसाला' ख़रीदिये। मूल्य फी बक्स दो आने।

(सरकार से रजिस्टर्ड)

बालामृतबटी

यह दवा बालकों के ज्वर, खांसी, ज़ुकाम, पसली चलना, पेटका फूलना या उसमें दर्द होना, दूध डालना, कुपच, हरे पीले दस्तों का आना इत्यादि अनेक रोगों को फ़ायदा करती है। इसके सेवन से बालकों के दांत आसानी से निकल आते हैं। हमें 'बालामृतबटी' की तारीफ़ में सैकड़ों प्रशंसापत्र मिले हैं। प्रत्येक बाल बच्चेदार गृहस्थी को यह दवा अपने यहाँ रखनी चाहिये, प्यारे बालकों को हृष्ट पुष्ट और नीरोग बनाने के लिये "बालामृतबटी" की एक शीशी ख़रीदने में ।=) ख़र्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं है।

हवन-सामग्री

अग्निहोत्र करते समय इसकी एक आहुति देने से ही घर तो घर सारा महल्ला सुगन्धि से महक उठता है। नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों और रोग-विनाशक औषधियों से यह सामग्री तय्यार की गई है। मूल्य १) सेर।

(सरकार से रजिस्टरी किया हुआ)

काशामृत

इस महौषधि को यक्ष्मा-उरक्षत (सिल) रूपी हाथी के लिये "सिंह" समान समझना चाहिये। यह दवा 'सिल' को उसी प्रकार दबा देती है जिस प्रकार बिल्ली चूहे को! इस रामबाण महौषधि से बहुतेरे लोगों के फेफड़े के रोग दूर हुए हैं। मूल्य फी बोतल १॥)

ऐन्टीफ़ीवर सीरप

घोर वर्षा के ... आजकल मलेरिया (... बुखार) की बड़ी शिकायत है। इस मूज़ी मरज़ से लोगों को बड़ा तंग होना पड़ता है। ... "... फ़ीवर सीरप (... शर्बत)" इस रोग को बात की बात में अच्छा करदेता है। यदि मलेरिया के दिनों में इसे भले चंगे आदमी सेवन करें तो उन्हें कभी रोग-शय्या की शरण न होना पड़े। इस दवा का खूब प्रचार हो रहा है। मूल्य फ़ी शीशी ।=)

...क माल ख़रीदने वालों को उचित कमीशन दिया जायगा।

श्री बा० नाथमल जी के ... र्यभास्कर प्रेस आगरा में छपा।